प्रथम अध्याय

नाट्यकाव्य : अर्थ एवं स्वरूप

1.1 रूप : अर्थ एवं परिभाषा –

'रूप' शब्द संस्कृत की रूप धातु से निर्मित है। जिसका अर्थ है बनाना या गढ़ना।[1] बृहत हिन्दी कोश के अनुसार रूप का अर्थ – सूरत, शक्ल, दृश्य पदार्थ, वस्तु, प्रकृति, स्वभाव, वेश, सौन्दर्य, शरीर, लक्षण, चिह्न, विकार, भेद एवं रूपक है।[2] अंग्रेजी में रूप का प्रयोग 'फॉर्म' के अर्थो में किया जाता है। 'फॉर्म' के पर्याय शब्द शेप, स्ट्रक्चर, एपियरैन्स आदि है।[3] अंग्रेजी, हिन्दी शब्द कोश के अनुसार – कुछ बनाना या संगठित करना, विशिष्ट संरचना बनाना, निर्दिष्ट वस्तु होना, जैसा बताया गया है वैसा होना आदि है।[4] रूप के निर्माण के लिए विशेष रीति या शैली का प्रयोग होता है। इसी विधि से सबंधित होने के कारण रूप प्रकार या विधा के अर्थो में प्रयुक्त होता है। अर्थो के आधार पर कहा जा सकता है कि रूप एक दृश्य आकृति है जिसका निर्माण एवं गठन किया जा सकता है। इसे निर्मित करने में विशिष्ट क्रम व्यवस्था और पद्धति का सहारा लिया जाता है। रूप का सम्बन्ध संवेदना प्रधान या राग–प्रधान अर्थो से है जिनमें अनुभव से उत्पन्न बुद्धि एवं व्यवस्थित करने वाली कल्पना का सामिप्य रहता है। वस्तुतः रूप का सम्बन्ध मानवीय अनुभूतियों के साथ–साथ मानवीय कल्पना, मानवीय इन्द्रिय बोध एवं मानवीय मूल्यों से भी है। रूप का संबंध सृजनात्मकता से है। और सृजनात्मकता मानवीय भावात्मक अर्थ के मल में होती है। मानवीय अनुभूति को रूप प्रदान करना ही रचना का कार्य है।

'रूप' को विद्वानों ने अपने–अपने ढ़ग से परिभाषित किया है। जिनमें से कुछ प्रसिद्ध विद्वानों की परिभाषा द्रष्टव्य है। डॉ॰ ब्रजेश्वर वर्मा के शब्दों में – ''साहित्य में रूप की समस्या वस्तुतः आकारगत तत्त्वों को इस प्रकार स्वाभाविक ढंग से मिला देने की समस्या है कि दोनों में सम्पूर्ण संगति एवं समरूपता दिखाई दे।[5] कला की मूल सुन्दरता इसी में है कि उसका रूपात्मक संगठन उसमें निहित संवेदना को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करने में समर्थ हो। हरबर्ट किसी भी कलाकृति की महत्ता उसके रूपात्मक गठन में ही मानते हैं – ''किसी कलाकृति की महत्ता उसके रूपात्मक गठन में निहित होती है, रूप में भावों को प्रकाशित करने की क्षमता होती और इस प्रकार के रूप के द्वारा हम भाव के स्वरूप को हृदयांगम करते है।[6] 'रूप भाव

---

[1] सम्पा॰ चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा, संस्कृत–शब्दार्थ–कौस्तुभ पृ॰ 647
[2] सम्पा॰ कालिका प्रसाद व अन्य, बृहत हिन्दी कोश, पृ॰ 964
[3] V.S. Apte, The New Standard Dictionary, P - 112
[4] सम्पा॰ सुरेश कुमार एवं रामनाथ सहाय, अग्रेंजी–अंग्रेजी–हिन्दी शब्द कोश, पृ॰ 472
[5] सम्पा॰ धीरेन्द्र वार्मा, हिन्दी साहित्य कोश, पृ॰ 848
[6] डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा, नयी कविता के नाट्य–काव्य, उद्धृत, पृ॰ 39

को सक्रिय बनाता है। कालाकार के पास सामग्री होती, परन्तु उसे कलात्मक ढंग से निबद्ध करने की प्रतिभा नहीं होती तो रचना के तत्त्वों के प्रति जागरूक रहते हुए भी वह रूप और विषय वस्तु में आंतरिक सामंजस्य नहीं कर पाता। जिससे रूपहीन कला का निर्माण होता है। उदाहणस्वरूप जिस प्रकार शरीर के बिना आत्मा अस्तित्व विहीन है वैसे ही विषय वस्तु एवं रूप के सामंजस्य के बिना कला अपना अस्तित्व खो देती है। ऐसे सारे शब्द – लय, छंद, तुक, रूपक, आदि जब वास्तविक मूल्यांकन के लिए प्रयुक्त होते हैं, कलात्मक रूप के ही पर्याय हैं। क्रोचे भी इसी का समर्थन करते हैं। वे सभी तत्व जो अवैज्ञानिक, विचारहीन, भावात्क अर्थो एवं उनकी अभिव्यक्ति के अंग हैं, कलात्मक रूप का बोध कराते है ये सभी तत्त्व मिलकर ही काव्य रूप का निर्माण करते हैं।

डॉ हरिशचन्द्र वर्मा के अनुसार – ''रूप केवल अभिव्यक्ति का ढंग मात्र नहीं है, वरन वह भाव का प्रस्तुतीकरण ही है।''[7] रूप सीमति एवं व्यापक दोनों ही अर्थो में प्रयुक्त होता है। सीमित अर्थो में वह बाह्य आकृति का ढांचा मात्र है, जबकि व्यापक अर्थो में वह काव्य या साहित्य के अभिव्यक्ति पक्ष का द्योतक है। अनेक भाषा–रूपों, अलंकारों, छंदों में या अभिव्यंजना की सूक्ष्मतम प्रणालियों में रूप का ही आत्म प्रसार हो रहा है।

परिभाषाओं के निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि रूप केवल अभिव्यक्ति का ढंग मात्र न होकर भाव का कलात्मक ढंग से प्रस्तुतीकरण है। वस्तुतः रचना प्रक्रिया के क्षणों में अनुभूति–अभिव्यक्ति के तत्त्वों में एकीकार होकर उभरती है। उससे पहले कवि के मन में अनुभूति एवं अभिव्यक्ति की परम्परगात एवं नवीन विधियों का दबाव रहता हैं लेकिन सर्जनात्मकता के क्षणों में दोनों का एकीकार हो जाता है। प्रस्तुतीकरण के ढंग अर्थात शैली का रूप विधान में बहुत महत्त्व है। किन्तु रूप प्रस्तुतीकरण का ढंग मात्र न होकर प्रस्तुतीकरण ही है। शैली का महत्त्व रूप के गठन में होने के कारण रूप के अर्थ में 'विधा' शब्द का प्रयोग होता है अतः रूप केवल बाह्य आकार मात्र नहीं है अपितु विषय वस्तु का संगठित कलात्मक संयोजन है। वस्तुतः रूप कवियों की प्रतिमा की अनन्तता है जिसके अनुसार रूप भी अनन्त है।

1.2 रूपों की विविधता का आधार :

साहित्य सृजन में निहित तत्त्व की रचना के रूप विधान में सक्रिय होते है। कवि के अन्तर्जगत एवं बहिर्जगत के प्रति क्रिया–प्रतिक्रियाएँ अन्तर्जगत में घटित होते समय भी कवि द्वारा समाज से ग्रहण की गई भाषा में रूपायित होती हैं। अन्तर्जगत एवं बाह्य जगत के विभिन्न स्वरूपों एवं परम्पराओं के सम्पर्क से कवि के मन में भाव, बुद्धि एवं कल्पना के सम्मिश्रण से संवेदना के सरल एवं जटिल अनेक रूप तैयार होते हैं। मानसिक प्रवृत्ति की दृष्टि

[7] डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा, साहित्य चिन्तन के नये आयाम, पृ॰ 44

से डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा के अनुसार कवि मानस तीन प्रकार के होते हैं। – 1. बहिर्मुखी 2. अन्तर्मुखी 3. बहिरन्तर्मुखी।[8]

बहिर्मुखी कवि विषय वस्तु को अधिक महत्त्व देता है। तथा अभिधात्मक भाषा का प्रयोग करता है। बहिर्जगत में मानव जगत के साथ–साथ प्रकृति जगत भी सम्मिलित हैं। चलायमान जगत की विभिन्न परिस्थितियाँ अन्तर्जगत की विविध मनः स्थितियों का जन्म देती है। कवि के मानसिक गठन पर जिस प्रकार पैतृक संस्कारों, परम्पराओं एवं युगीन परिवेश के प्रभाव पड़ता है। उसी प्रकार युगीन परिस्थितियों के निर्माण पर भी सांस्कृतिक चेतना एवं ऐतिहासिक सत्यता का प्रभाव पड़ता है। कवि अपने इसी मानसिक संगठन के कारण अपने समय में जीवित रहते हुए भी उससे अधिक व्यापक स्तर पर चिंतन कर सकता है तथा अपने परिवेश एवं समय की विसंगतियों, विकृतियों एवं परिस्थितियों को अनुभव कर सकता है। प्रत्येक युग में कवि की दृष्टि और उसके भोगे हुए जीवन में कुछ न कुछ अंतर अवश्य रहता है। कवि अपनी रचनाओं में उसी अन्तराल के विरूद्व संघर्ष करता है। जो कवि केवल अपने भोगे हुए जीवन को ही सत्य मानकर रचना करता है वह केवल भोक्ता एवं अनुकर्ता ही बन जाता है। ऐसा कवि सृजनशील एवं दूरदर्शी नहीं बन पाता। कवि द्वारा भोगे हुए जीवन एवं उस समय की विषमताओं के मध्य अन्तर्विरोध की जटिलता ही कवि की अनुभूति और भाषा में जटिलता लाती है। बहिर्मुखी कवि मानस का सम्पर्क जब सुदीर्घ परिस्थिति श्रृंखला से होता है, तो वर्णन–प्रधान कथा काव्यों, घटना–प्रधान उपन्यासों, नाटकों, यात्रा विवरणों, जीवनियों एवं ऐतिहासिक नाटकों तथा उपन्यासों का उदय होता है। बिना मानसिक तनाव के अनुभूति एवं अभिव्यक्ति सृजनात्मक स्तर तक नहीं पहुंच पाती।

अन्तर्मुखी रचनाकार वस्तुतः तीव्र प्रभाव उत्पन्न करने वाली अचिरस्थायी परिस्थितियों को अपने भाव संचार का विषय चुनते हैं। अन्तर्मुखी कवि अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों की गीतों के माध्यम से मार्मिक एवं व्यंजनामयी भाषा में व्यक्त करता रहता है। उदाहरण स्वरूप विद्यापति, सूरदास, मीरा और महादेवी वर्मा इसी श्रेणी के रचनाकार हैं। अन्तर्मुखी मानस और अचिरस्थायी के सम्पर्क से गीत, कहानी, एकांकी, नाटक, भावपूर्ण निबंध, मार्मिक संस्मरण आदि साहित्य रूपों का उदय होता है।

बहिरन्तर्मुखी कवि में दोनों प्रवृत्तियों का सामंजस्य होता है। वह गीत, प्रबन्धकाव्य, नाटक एवं नाट्य–काव्य का लेखन करता है। उसकी कृतियों में न ही संवेदना कथावस्तु पर हावी होती है और न ही कथावस्तु संवेदना को धुमिल कर पाती है। बहिरन्तर्मुखी कवि में कालिदास, तुलसीदास, प्रसाद, निराला, दिनकर, धर्मवीर भारती जैसे नाम प्रमुखतया आते हैं। इस श्रेणी के कवि श्रेष्ठ माने जाते हैं। क्योंकि इनमें अन्तर्मुखता एवं बहिरर्मुखता का उच्च स्तर

[8] डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा, नयी कविता के नाट्य–काव्य, पृ ॰ 41

पर सामंजस्य घटित होता है। ये दोनों प्रकार की परिस्थितियों को अपनी रचना का विषय चुनते हैं। उच्च कोटि के गीत, भावपूर्ण महाकाव्य, खण्ड काव्य, मर्मस्पर्शी उपन्यास नाटक और नाट्य–काव्य ऐसे ही सृजनात्मक मानस की उपज होती है। जिनका प्रभाव व्यापक एवं गम्भीर होता है। कामायानी, उर्वशी, चित्रलेखा, नदी के द्वीप, अंधा युग आदि कृतियाँ इसी श्रेणी के कवियों की उपज हैं।

रचना में भावाभिव्यक्ति का जो उत्कर्ष मिलता है इसके मूल में कवि द्वारा अर्जित अनुभूति के साथ ही उसकी प्रतीकात्मक भाषा भी निहित है। प्रत्येक युग में संवेदना को वाणी देने के लिए भाषा के स्वरूप और गठन में भी विशिष्टता आती रहती है। रचना प्रक्रिया के समय कवि की दृष्टि में पाठक वर्ग भी वर्तमान रहता है। जिस तक वह अपनी अनुभूतियों को पहुँचाना चाहता है। अर्थ तत्त्व अथवा अनुभूति और आकारगत तत्त्वों अर्थात् अभिव्यक्तिगत उपादानों का सुन्दर सम्मिश्रण ही किसी कृति को सुन्दर और श्रेष्ठ रूप प्रदान करता है।

1.3 नाट्य–काव्य तथा अन्य संबंध नामकरण :

साहित्य विधाओं के नाम उनकी चेतना एवं उनके स्वरूप का बोध कराते हैं 'कविता' से 'कहानी' का बोध नहीं होता और न ही कहानी से 'कविता' का। इस विषय में शेक्सपीयर की यह उक्ति प्रचलित है कि नाम में क्या रखा है? लेकिन यह उक्ति हमें सही प्रतीत नहीं होती। 'गुलाब' के साथ जो सुगन्ध हमारी चेतना से जुड़ी हुई है, वह गुलाब से ही प्रकट हो सकती है। गुलाब से केवल सुगन्ध का ही बोध नहीं होता उसके नाम का भी उतना ही महत्त्व है। 'कमल' कहने पर हमारे मानस पटल पर 'कमल' का ही प्रतिबिम्ब उभरता है, गुलाब का नहीं यह सब नाम के महत्त्व के कारण ही होता है। अतः किसी साहित्य रूप के नाम के औचित्य पर विचार करना आवश्यक है। सामान्यतः जिनका माध्यम पद्य और विधि नाटकीय है, ऐसी रचनाओं को किस नाम से पुकारा जाए? टी.एस. इलियट ने अंग्रेजी में नाटकीय और काव्य के तत्त्वों के आधार पर रचित कृत्तियों को जहाँ एक ओर 'पोयेटिक ड्रामा[9] कहा है, वहीं दूसरी ओर 'ड्रैमेटिक पोयट्री'[10] कहा है। हिन्दी में ऐसी रचनाओं को अंग्रेजी के आधार पर ही गीति–नाट्य[11] नाम से अभिहित किया है, कुछ आलोचकों व लेखकों ने इसे भाव–नाट्य नाम दिया हैं। कुछ रचनाकार भावनाट्य एवं गीतिनाट्य को दो अलग शैलियाँ मानते हैं। परन्तु दोनों में अन्तर स्पष्ट नहीं कर पाते। आचार्य विनयमोहन शर्मा के अनुसार गीतिनाट्य में गीतात्मकता के अतिरिक्त एक गुण होना चाहिए। वह है नारी का बाहुलय, साथ ही उसकी नायिका नारी होती है और उसका रस

---

[9] डॉ ० हरिश्चन्द्र वर्मा, नयी कविता के नाट्य–काव्य, पृ ० 55 से उद्धृत
[10] वही, पृ॰ 55
[11] वही, पृ॰ 55

होता है, रस राज श्रृंगार। रचना–तन्त्र की दृष्टि से यह भाव नाट्य कहलाता है।[12] इस तरह गीतिनाट्य को ही भाव नाट्य कहते हैं।[13] जबकि डॉ नगेन्द्र जैसे आलोचक 'गीतिनाट्य' कहकर उसकी समीक्षा करते हैं।[14] वहीं दूसरी ओर भट्ट जी ने 'विश्वामित्र' को गीति–नाट्य कहा है।[15] जबकि डॉ रामचरण महेन्द्र ने उसकी चर्चा भाव–नाट्य कहकर की है।[16] डॉ॰ महेन्द्र के अनुसार ''गीति नाट्य वह रचना है, जिसमें गीत अधिक हों, या वह नाटक जो केवल गीतों पर ही आधारित हों, जिसमें गेय छंदों की प्रधानता हो। गीतिनाट्यों में काव्य–सौष्ठव तथा गेय तत्त्व रहना चाहिए। कवित्व इसका प्राण है, इसमें संगीत भी रहता है।''[17] उक्त परिभाषा में डॉ॰ महेन्द्र ने स्वयं कविता को कृति का प्राण स्वीकार किया है। वहीं डॉ॰ महेन्द्र अपनी पुस्तक हिन्दी एकांकी : उद्भव और विकास में स्वीकार किया है कि ''गीति नाट्यों के अन्तर्गत वे सभी रचनाओं पर विचार करते हैं, जो संगीत और गेय छन्द विहीन हैं। तुकहीन स्वच्छंद छंद में है।''[18] यदि सुक्ष्मता से विचार किया जाए तो ये दोनों विचार ही उपयुक्त नहीं हैं यदि गीति नाट्य की चर्चा करें तो 'हिन्दी–साहित्य–कोश' में गीति नाट्य के टिप्पणीकार ने लिखाहै – ''इसमें सारी कथा गीतों के माध्यम से प्रस्तुत की जाती है।''[19]

आलोचकों ने 'धर्मबीर भारती' कृत 'अंधा युग' को सफल 'गीति–नाट्य' माना है यहाँ कहने की आवश्यकता नहीं कि जब 'अंधायुग', 'एक कण्ठ विषपायी' जैसी रचनाओं की कथा गीतों के माध्यम से प्रस्तुत नहीं की जाती तो ऐसी रचनाओं को गीति नाट्य नाम से अभिहित करना उचित प्रतीत नहीं होता। स्वयं भारती जी ने 'अंधायुग' को मूलतः काव्य ही कहा है।''[20] उन्होंने इसे दृश्य–काव्य[21] भी कहा है। जिसका अर्थ नाटक की अपेक्षा नाट्य–काव्य अधिक प्रतीत होता है। डॉ॰ सुरेन्द्र गुप्त के शब्दों में ''दृश्य–काव्य में दृश्य शब्द नाटक के लिए रूढ़ हो गया है।''[22] इसी का समर्थन डॉ॰ माया मलिक ने भी किया है उन्हीं के शब्दों में – ''अर्थ व्याप्ति की दृष्टि से दृश्य–काव्य में दृश्य शब्द का अर्थ नाटकीयता से है और काव्य शब्द का अर्थ कविता से इस प्रकार दृश्य–काव्य शब्द का अर्थ हुआ एक ऐसी रचना जिसमें नाटकीयता तथा काव्यत्व का समन्वय निहित हो।''[23] इन्होंने अंधा युग को एक सफल नाट्य–काव्य भी कहा है।

---

[12] डॉ॰ रामचरण महेन्द्र, हिन्दी नाटक के सिद्धान्त और नाटककार पृ ॰ 7
[13] उदयशंकर भट्ट, राधा (भूमिका) पृ॰ 1
[14] डॉ॰ नगेन्द्र, आधुनिक हिन्दी नाटक, पृ॰ 120
[15] उदयशंकर भट्ट, विश्वामित्र, भूमिका पृ॰ (ख)
[16] डॉ॰ रामचरण महेन्द्र, हिन्दी नाटक के सिद्धान्त और नाटककार, पृ॰ 75
[17] वही, पृ॰ 75
[18] डॉ॰ रामचरण महेन्द्र, हिन्दी एकांकी : उद्भव और विकास, पृ॰ 366
[19] प्र॰ सम्पा॰ डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश भाग–1, पृ॰ 294
[20] डॉ॰ धर्मवीर भारती, अंधायुग (निर्देश),पृ॰ 5
[21] वही, पृ॰ 5
[22] डॉ॰ सुरेन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य : विविध परिप्रेक्ष्य, पृ॰ 104
[23] डॉ॰ माया मलिक, अंधायुग : रचनाधर्मिता के विविध आयाम पृ॰ 68

वस्तुतः अंधायुग में प्रस्तुत नाटकीयता और काव्यत्व के सुसमन्वय को लक्षित करते हुए धर्मबीर भारत ने अपनी इस विशिष्ट कृति को अन्य साहित्य रूपों के साथ–साथ 'दृश्य–काव्य' भी कहा है। उन्होंने इसे नाटक की संज्ञा भी दी है। परन्तु गीति–नाट्य कहीं नहीं कहा।

डॉ॰ सिद्धनाथ कुमार के मतानुसार– ''हमारे शब्दों में तथा कथित गीतिनाट्यों में गीति तत्त्व की प्रधानता नहीं है। गीति तत्त्व एवं नाटकीय तत्त्व दो अलग–अलग चीजें हैं, मात्र गीतितत्त्व से नाटक की रचना सम्भव नहीं होती तथा कथित गीति नाट्यों में काव्य तत्त्व भी रहता है, छन्दोबद्धता भी।''[24] प्रबंधकार कवि और नाट्यकार में प्रबन्धात्मक या कथानक तत्त्व की उभयनिष्ठता के कारण नाट्य काव्य की रचना वही कवि कर सकता है, जिसमें जीवन के विशाल परिदृश्य को अनुभूति में लपेट लेने की प्रतिभा हो। डॉ॰ बच्चन सिंह के गीति नाट्य के विषय में विचार इस प्रकार हैं। – ''गीति नाट्य का गीति तत्त्व नाटक का अनिवार्य अंग होने से उसे अपेक्षित ऊँचाई दे पाता है। यह बाह्य रूप से जुड़ता हुआ कोई उपकरण नहीं है बल्कि उसके भीतर से ही नाटक सिरजा जाता है।''[25] इसके अनुसार गीति तत्त्व को नाटक का अनिवार्य अंग माना गया है प्रबन्ध काव्य और नाटक दोनों प्रबन्धात्मक विधाएँ है जिसमें एक सुसबंध वस्तु–व्यापार का आश्रय लिया जाता है जबकि गीति एक मुक्तक रचना है।

''काव्यगत लय के कारण गीतिनाट्य पाठकों की संवेदनाओं और संवेगों के गहन स्तर पर उदघाटित करने में अधिक समर्थ होता है काव्य का दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व बिम्ब–योजना है। आधुनिक जीवन की पेचीदगियों को अभिव्यक्त करने के लिए प्रतीत–विधान भी आवश्यक हो गया है। इन तत्त्वों के कारण गीति–नाट्य के व्यंग्य को जो वैशिष्ट्य प्राप्त हो जाता है, वह गद्य नाटक के लिए शक्य नहीं है।''[26]

इन समस्त प्रयोगों के बावजूद भी काव्य तत्त्व से रिक्त नाटकों में सार्वकालिकता उस सीमा तक नहीं आ पाती जिस सीमा तक काव्य तत्त्व समन्वित नाटकों में देखी जाती है।''[27] उक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि बच्चन सिंह ने गीति नाट्य के लिए काव्यगत लय, काव्य तत्त्व, काव्य उपकरणों को आवश्यक तत्त्व माना है। यहाँ 'गीति' के लिए 'काव्य' का प्रयोग किया जा सकता है परन्तु काव्य के लिए गीति शब्द का प्रयोग नहीं हो सकता क्योंकि काव्य शब्द गीति की अपेक्षाकृत अधिक व्यापक है। वस्तुतः हिन्दी में जिन रचनाओं को गीतिनाट्य नाम से अभिहित किय गया है,वे न तो प्रमुखतः गीतियाँ ही है और नहीं नाटक अपितु छोटी बड़ी किस्म के नाटकीय काव्य ही हैं। ''टी. एस. इलियट ने भी काव्य और नाटक के मिश्रण से उद्भूत कृतियों को 'लिरिकल–ड्रामा' न कहकर काव्य–नाटक या नाट्य–काव्य ही कहना उपयुक्त

---

[24] डॉ॰ सिद्धनाथ कुमार, हिन्दी काव्य नाटक : एक सर्वेक्षण, पृ॰ 62
[25] डॉ॰ कृष्ण सिंहल हिन्दी गीति नाट्य (भूमिका) पृ॰ 11
[26] डॉ ॰ बच्चन सिंह, कृष्ण सिंहल द्वारा लिखित (हिन्दी गीति नाट्य) भूमिका, पृ ॰ 11
[27] वही,पृ ॰ 11

समझा है।''[28] इन्होंने काव्य एवं नाटक के सामजंस्य से जन्मी कृतियों को नाट्य काव्य नाम से अभिहित किया है। वहीं यह भी मानते हैं कि – ''जिन नाटकों का संबध उनकी बाहरी भावनाओं, चेष्टाओं से होता है, उनको गद्य में लिखा जाता है। पर आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति के लिए गद्य उपयुक्त नहीं होता। कविता में भावों को तरंगित करने की शक्ति गद्य की अपेक्षा अधिक होती है।''[29] उनके इस कथन से स्पष्ट है कि गद्य नाटक और कविता में रचित नाटकों में भेद ऊपरी नहीं अपितु आंतरिक एवं मौलिक है। भट्ट जी के शब्दों में – ''पद्य में ही आन्तरिक भावों की अनुभूति अधिक सम्भव है। इस अनुभूति के लिए तदनुकूल मनोस्थिति होनी आवश्यक है।''[30] इसी वार्ता पर प्रकाश डालते हुए डॉ॰ शकुन्तला दुबे ने लिखा है कि ''यह काव्य रूप गीति काव्य की कोमलता के साथ–साथ नाटक के सौन्दर्य को भी लेता चलता है कटु एवं पुरूष व्यापारों का एवं कठोर रसों का अधिकतर बहिष्कार किया जाता है। जीवन के ऐसे व्यापार जो सूक्ष्म हैं, कोमल है, भावात्मक और मर्मस्पर्शी शब्दों का सहारा लेकर मूर्त रूप धारण करते हैं।''[31] यहाँ भी काव्य को ही महत्ता प्रदान की गई हैं। डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा ने अपने शोध–प्रबन्ध 'नयी कविता के नाट्य–काव्य' में नाटकीयता तथा काव्यत्व दोनों तत्त्वों के समन्वय से रचित कृतियों को नाट्य–काव्य नाम से अभिहित किया है जो अब एक स्वतन्त्र विधा के नाम से प्रतिष्ठित है। इससे पूर्व हिन्दी में साहित्य में इस प्रकार की कृतियों के लिए पद्यनाटक, पद्यरूपक, भावनाट्य, गीति–नाटय, काव्य–नाटक आदि नाम दिये जाते रहे है। हम नाट्य काव्य विधा से संबधित अन्य नामों का तर्कपूर्ण ढंग से विवेचन करेगे।

1.3.1 भावनाट्य :

भाव नाट्य के विषय में तीन मत विशेष रूप से प्रचलित हैं प्रथम मत के अनुसार भाव नाट्य एवं गीति–नाट्य में कोई अन्तर नहीं माना गया है। अनेक विद्वानों ने भावनाट्य एवं गीतिनाट्य में कोई व्यावर्तन नहीं किया। वे गीति नाट्य को ही भाव–नाट्य मानते हैं। उनका तर्क है कि – ''गीति–नाट्य में बाह्य क्रियाकलापों का उतना वर्णन नहीं होता, जितना कि भावों का। इसकी शैली नाटकों की अपेक्षा अधिक भावात्मकता लिए हुए होती है। इसी भावशवलता के कारण इन्हें भावनाट्य की संज्ञा दी गई है।''[32] डॉ॰ शकुन्तला दुबे के अनुसार ये दोनों एक ही हैं। इन पंक्तियों के अनुसार यह स्पष्ट है कि केवल भावों की अधिकता के कारण ही किसी भी कृति को भावनाट्य नाम देना अनुचित है क्योंकि भाव तो प्रत्येक कृति का महत्वपूर्ण तत्त्व

---

[28] डॉ ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा, नयी कविता के नाट्य–काव्य से उद्घृत, पृ॰ 59
[29] उदय शंकर भट्ट, विश्वामित्र और दो भाव नाट्य, स्पष्टीकरण, पृ॰ क
[30] उदयशंकर भट्ट, विश्वामित्र और दो भाव नाट्य, स्पष्टीकरण, पृ ॰ क
[31] वही, पृ॰ 535
[32] वही, पृ॰ 535

है। गद्य हो पद्य भाव दोनों में ही निहित रहता है। क्योंकि भाव के अभाव में कृति का उद्‌भव नहीं हो सकता। काव्य के अन्दर ही भाव का समावेश होता है।

द्वितीय मत ऐसे मनीषियों का जो गीति–नाट्य एवं भाव–नाट्य को अलग विधा मानते हैं। इनके अनुसार इनका माध्यम भिन्न होता है। डॉ॰ नगेन्द्र के मतानुसार–''गीतिनाट्य सर्वथा कविताबद्ध होता है और भाव नाट्य का माध्यम गद्य होता है।''[33] इसके अतिरिक्त वे कहते हैं कि ''इस दृष्टि से भाव नाट्य का मुख्य रस श्रृंगार है और प्रधान पात्र नारी है'' इसी व्यावर्तन के आधार पर 'भारतेन्दु– की 'रत्नवाली', 'गोविन्द वल्लभ पंत' की 'वरमाला' और 'अन्तः पुर का छिद्र' को भावनाट्य मानते हैं और भट्‌ट द्वारा रचित 'राधा', 'विश्वामत्रि' और 'मत्स्यगंद्या' को गीति नाट्य कहते हैं।''[34] परन्तु नगेन्द्र जी का यह विश्लेषण स्वीकार करने योग्य नहीं है किसी भी अन्य आलचेक ने उपुर्यक्त दी गई कृतियों को भाव–नाट्य की संज्ञा नहीं दी है। भावों का प्रणयन पद्य में अधिक होता है क्योंकि भावों का प्रणयन जितने सुन्दर ढंग से पद्य में हो सकता है, उतने सुन्दर ढंग से गद्य में नहीं। इसलिए भाव नाट्य सर्वथा पद्यबद्ध होता है। आलोचकों का मानना है कि ''गीतिनाट्य में स्वर एवं गेय तत्त्वों की प्रधानता होने के कारण आन्तरिक भावों एवं द्वन्द्व की अभिव्यंजना इतने सुन्दर ढंग से नहीं हो पाती जितने सुन्दर ढंग से भाव नाट्य में होती है।''[35]

डॉ॰ निर्मला जैन भावनाट्य नाम ही अस्वीकार करती हैं। उनके मतानुसार – ''भावमयता का भाव 'काव्य' शब्द में और भावान्विति एवं दृश्यात्मकता का भाव नाट्य शब्द में अन्तभूर्त है।''[36] अतः वे भाव नाट्य नाम को उचित नहीं मानती। उनका तर्क है कि भावों की अभिव्यंजना गद्य एवं पद्य दोनों में ही सकती है इसलिए मात्र काव्य में लिखे गये नाटकों को भी भाव नाट्य की संज्ञा दी जाए, यह उचित नहीं हैं, हाँ, नाट्यकाव्य के लिए भाव–प्रवणता अनिवार्य है। इसलिए भावनाट्य अभिधान स्वीकार्य नहीं हैं।

वस्तुतः भावनाट्य अभिधान नाटक में अतिश्य भावुकता को देखकर दिया गया है जो उचित नहीं भावमयता कविताबद्ध नाटकों को अनिवार्य अंग है। यह संभव है कि भाव प्रवणता किसी कृति में कम एवं किसी में अधिक हो सकती है। परन्तु न्यूनाधिक के आधार पर एक कृति को नाट्य काव्य एवं एक को भाव नाट्य नाम देना उचित नहीं हैं। भाव तो नाट्य काव्य का अंग है, अंगी नहीं। अतः भावनाट्य को नाट्य–काव्य का एक उपभेद मात्र माना जा सकता है। अतः ऐसी कृतियों के लिए जो काव्यमय है तथा जिनकी शैली नाटकीय है भाव नाट्य नाम उचित प्रतीत नहीं होता।

---

[33] डॉ॰ नगेन्द्र, आधुनिक हिन्दी नाटक, पृ॰ 117
[34] वही, पृ॰ 117
[35] डॉ॰ रामचरण महेन्द्र, हिन्दी एकांकी : उद्‌भव और विकास, पृ॰ 364
[36] डॉ॰ निर्मला जैन, आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधाएँ, पृ॰ 360–62

1.3.2 पद्य नाटक एवं पद्य रूपक :

कविताबद्ध नाटकों के लिए 'पद्य नाटक' एवं 'पद्य रूपक' अभिधानों का भी प्रयोग होता है।''[37] ब्रेडर मैथ्यूज ने अपनी पुस्तक 'नाटक साहित्य का अध्ययन' में ऐसी परिभाषा दी है। इन दोनों नामों में मात्र रूपक एवं नाटक शब्द का भेद है। पूर्व में नाटक रूपक का ही एक भेद था यद्यपि कालानतर में नाटक शब्द का प्रयोग रूपक के पर्याय के रूप में होने लगा। अभिनव गुप्त के अनुसार – ''नाट्य शब्द 'नम नार्थक नट' शब्द से उत्पन्न होता है। जिसमें पात्र अपने स्व का परित्याग कर 'पर' का प्रभाव ग्रहण करता है। दूसरे शब्दों में रूप धारण करता है। अतः वह नाटय या रूपक होता है। आज वस्तुतः नाटक एवं रूपक का प्रयोग समानार्थी के रूप में किया जाता है।''[38] इससे स्पष्ट है कि पद्य नाटक एवं पद्य रूपक नाम विवेच्च विधा के लिए स्वीकार्य नहीं हैं। क्योकि पद्य आज एक तो काव्य का पर्यायवाची नहीं रह गया है और दूसरा उसमें बहिरंग की प्रधानता है हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार – ''व्युत्पत्ति की दृष्टि से पद्य युक्त या गण–मात्रा युक्त रचना को पद्य कहते हैं। इसका संबध रचना के बहिरंग तत्त्व की ओर होता है अतरंग तत्त्व की ओर इसका कोई संकेत नहीं होता।''[39] मानसिक द्वन्द्व इन नाटकों का प्राण हैं। इनमें गण मात्रा युक्त पद्य का भी प्रयोग नहीं होता। इसके लिए मुक्तक छन्द ही अधिक उपयोगी माना गया है। क्योंकि इसके माध्यम से विचारों का प्रस्तुतीकरण सुन्दर ढंग से होता है। डॉ॰ शशिकान्त शर्मा के अनुसार – ''पद्य नाटकों में पद्य शब्द नाटक का विशेषण है अतः ऐसी कृतियाँ जिनमें नाटकीयता की प्रमुखता हो और काव्य में लिखी गई हों, उन्हें पद्य नाटक कहना संगत प्रतीत होता है।''[40] जहाँ इन्होंने पद्य को नाटक शब्द का विशेषण बताया है वहीं नाटकीयता पर बल दिया है काव्य पर नहीं। जबकि नाट्य–काव्यों में काव्य प्रमुख है नाटक गौण रूप से रहता है।

सिद्धनाथ कुमार ने पद्य नाटक एवं नाट्य–काव्य को अलग विधा स्वीकार करते हुए लिखा है कि ''नाटकीयता तथा पद्य नाटक का अन्तर इनकी विधाओं की चेतना, इनके स्वरूप एवं इनके माध्यम से देखा जा सकता है पहली बात से यह स्पष्ट हो चुका है कि पद्य नाटक नाटक है जबकि नाटकीय कविता कविता है। नाटक की रचना प्रदर्शन या प्रस्तुतीकरण, माध्यम, प्रस्तुतकर्ता, दर्शक, श्रोता आदि की सीमाओं और शक्तियों द्वारा नियन्त्रित होती है पर नाटकीय कविता इन बन्धनों से मुक्त होती है। नाटकीय कविता मूलतः पाठ्य है। सम्भव है वह संवादों में लिखित हो और ऐसी स्थिति में वह पाठ्य नाटक है।''[41] इसके विपरीत स्वयं सिद्धनाथ कुमार ने यह भी कहा है कि ''सन् 1951 में मेरा पहला पद्यनाटक 'कवि' (जिसे मैनें गीति नाट्य कहा

---

[37] ब्रेडर मैथ्यूज, नाटक साहित्य का अध्याय, पृ ॰ 136
[38] डॉ॰ सुरेन्द्र दीक्षित, भारत और भारतीय नाट्य कला, पृ ॰ 124
[39] हिन्दी साहित्य कोश, सम्पा॰ धीरेन्द्र वर्मा, पृ॰ 349
[40] डॉ॰ शशिकान्त शर्मा, आधुनिक हिन्दी पद्यनाटकों का संरचानात्मक अनुशीलन, पृ॰ 10
[41] डॉ॰ सिद्धनाथ कुमार, हिन्द पद्यनाटक : सिद्धान्त और इतिहास, पृ॰ 16

था जैसा उस समय वैसी रचनाओं के लिए कहा जाता था) प्रकाशित हुआ।''[42] ''जिसे कवि और आलोचक पहले भावनाट्य एवं गीतिनाट्य आदि कहते थे। मैनें उसे 1954 में काव्य–नाटक कहा और अब उसे ही पद्य–नाटक नाम दे रहा हूँ।''[43] इससे स्पष्ट है कि पद्य नाटक कहने वाले लेखक स्वयं ही इस नाम से आश्वस्त नहीं है। वे समय के साथ–साथ स्वयं अपनी कृतियों को भावनाट्य, गीतिनाट्य एवं काव्य नाटक नाम देते आए हैं।

'किसी भी नाटक के छन्दोबद्ध होने के कारण उसे पद्य नाटक भी कहा जाता है, किन्तु मात्र छन्दोबद्धता के कारण कोई नाटक 'काव्य–नाटक' या 'नाट्य–काव्य' नहीं हो जाएगा।''[44] डॉ॰ माया मलिक के शब्दों में – ''प्राचीन काल में गणित, ज्योतिष, व्याकरण, काव्यशास्त्र, दर्शनशास्त्र, स्मृति–ग्रन्थ आदि के छन्दोबद्ध होने पर भी उन्हें काव्य रूप में स्वीकार किया जाता था, पद्य ही कहा जाता था। उसी प्रकार काव्यत्व के अभाव में पद्य में रचित नाटकों को पद्य नाटक कहा जा सकता है, नाट्य–काव्य नहीं।''[45] जिसे हम नाट्य काव्य कह रहे हैं उसमें काव्य तत्त्व की प्रधानता है। इनमें छन्दोबद्धता के साथ काव्यगत उत्कर्ष भी है यह ध्यान देने योग्य बात है कि पद्य और कविता में अन्तर होता है। पद्य के लिए मात्र छन्दोबद्धता पर्याप्त होती है, जबकि कविता के लिए रसात्मकता, रमणीयता – प्रतिपादकता, संवेदनशीलता और कल्पना आदि से सम्बंध गुणों की अपेक्षा होती है। कुछ विद्वान काव्य को पद्य का पर्याय मानते है जो उचित नहीं है। पद्य नाटक के संबंध में हुई वार्ताओं से स्पष्ट है कि पद्य नाटक मात्र छन्दोबद्ध नाटक है और इसकी सार्थकता प्रदर्शित एवं प्रस्तुत किए जाने में है इनकी प्रस्तुतीकरण के माध्यम–रेडियो और रंगमंच है। परन्तु इनमें कतिपय रचनाएँ ऐसी है जो प्रस्तुतीकरण के माध्यमों की चिन्ता से मुक्त हैं। ऐसी रचनाओं के लिए पद्य नाटक की अपेक्षा नाट्य काव्य नाम अधिक उपयुक्त लगता है। उदाहरण स्वरूप अंधायुग को सफलतापूर्वक मंच पर प्रस्तुत किया जा चुका है। अतः इस विधा के लिए पद्य नाटक नाम असंगत प्रतीत होता है। विलियम आर्चर ने ''पद्य नाटक की तुलना ऐसे जन्तु से की है जो धरती पर जी नहीं पाता और पानी में दम तोड़ देता है।''[46] एक अन्य पाश्चात्य विद्वान थाम्स आर्नल्ड भी पद्य नाटक नाम स्वीकार नहीं करते है। विलियम आर्चर ने भी अपनी पुस्तक 'प्ले मार्किंग' में पद्य नाटक नाम को अस्वीकार किया है। उनके शब्दों में – ''पद्य के लिए मंचन की संभावनाओं में हमें पात्रों के कवि रूप को मान्यता देनी पड़ेगी जो सहज नहीं है।''[47] इसके अतिरिक्त डॉ॰ गिरीश रस्तोगी भी

---

[42] डॉ॰ सिद्धनाथ कुमार, हिन्दी पद्य नाटक : सिद्धान्त और इतिहास (भूमिका) पृ॰ 3
[43] वही, पृ॰ 3
[44] डॉ॰ सिद्धनाथ कुमार, काव्य नाटक, प्र॰ सम्पा॰ डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, भाग–1, पृ॰ 294
[45] डॉ॰ माया मलिक, अंधायुग : रचना धर्मिता के विविध आयाम, पृ॰ 71
[46] थाम्स आर्नल्ड, एन॰ एस॰ ऑन॰ ड्रैमेटिक पोयट्री, पृ॰ 10
[47] विलियम आर्चर, प्ले माकिंग, पृ॰ 21

नाट्य काव्य विधा के लिए पद्यनाटक नाम असंगत मानते हैं हुए कहते हैं – ''जिन्हें हम गीति–नाट्य कहते हैं, उसमें गीति तत्त्व प्रधान नहीं हैं – वरन उसमें काव्य तत्त्व, छंदों–बद्धता, गीत और नाटक सभी अंश हैं, सबसे उपयुक्त नाम काव्य नाटक प्रतीत होता है, उसमें गीत अथवा संगीत लाना नाटकाकार की कला, प्रतिभा, कल्पना और सूझ–बूझ पर निर्भर करता है। अतः इस विधा को पद्य नाटक कहना उचित प्रतीत नहीं होता।''[48] पद्य में काव्य का अभाव होता है जबकि हम जिस विधा की चर्चा कर रहे है उसमें काव्य तत्त्व की ही प्रधानता है किसी भी कृत्ति को पद्य नाटक की संज्ञा से अभिहित करने पर यह बोध नहीं हो पायेगा कि इसमें छन्दोबद्धता के साथ काव्यगत उत्कर्ष भी है या नहीं। डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा एवं डॉ॰ रामचरण महेन्द्र ने भी विवेच्य विधा के लिए नाट्य–काव्य नाम ही सार्थक माना है। डॉ॰ कृष्ण सिंह सिहल के मतानुसार भी – ''पद्य नाटक एवं पद्य रूपक काव्य तत्त्व से विरहित हो सकते है। ऐसी स्थिति में इन नामों की व्यर्थता स्वतः ही सिद्ध हो जाती है।''[49]

1.3.3 काव्य–नाटक एवं काव्य–रूपक :

काव्य–नाटक काव्यत्व और नाटकत्व के संघात में निर्मित शब्द है जिस रचना में काव्य के सभी तत्त्व और नाटकीयता के सभी गुण समान मात्रा में निहित हों, उसे काव्य–नाटक कहा जा सकता है। दूसरे शब्दों में कविता में लिखा गया नाटक काव्य नाटक है। डॉ सुरेश गौतम के शब्दों में – ''काव्य–रूपक का अर्थ काव्य में रचित रूपकों से हैं।''[50] यहाँ रूपक का अर्थ नाटक से है। इसी को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं किं – ''काव्य–रूपक का अभिप्राय ही नाट्य तत्त्व और काव्य तत्त्व दोनों का सम्मिश्रण है। काव्य तत्त्व होने से उसमें मानव जीवन के रागतत्त्व की प्रमुखता होती है, भावनयें और अनुभूतियाँ तीव्र वेग के साथ गतिमय प्रवाहत्मकता को समेट लेती है और तत्त्व के कारण उसमें मानव जीवन के रागतत्त्व की प्रमुखता नाट्य तत्त्व के कारण उसमें कथावस्तु और बहिर्जगत का चित्रण होता है इस प्रकार काव्य रूपक में मानव का अन्तर्जीवन बर्हिजगत चित्रण की समान रेखाओं में अभिव्यक्ति पाता है।''[51] रूपक का अर्थ नाटक होने से काव्य–रूपक एवं काव्य–नाटक एक ही हैं। 'हिन्दी 'काव्य–नाटक' शब्द अंग्रेजी के 'पोइटिक ड्रामा' का अनुवाद है।''[52]

आलोचकों एवं लेखकों का एक बहुत बड़ा वर्ग कविताबद्ध नाटकों के लिए 'काव्य–नाटक'[53] एवं 'काव्य–रूपक'[54] अभिधानों का प्रयोग करता है। अभिनव गुप्त के मतानुसार

---

[48] डॉ गिरीश रस्तोगी, हिन्दी नाटकः सिद्धान्त और विवेचन, पृ॰ 5
[49] डॉ॰ कृष्ण सिंहल, हिन्दी गीति नाट्य, पृ॰ 56
[50] डॉ॰ सुरेश गौतम, अंधायुग एक सृजनात्मक उपलब्धि, पृ॰ 5
[51] वही पृ 52
[52] प्र॰ सम्पा॰ डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश भाग–1, पृ॰ 254
[53] डॉ॰ सिद्धनाथ कुमार, सृष्टि की साँझ और अन्य काव्य नाटक, भूमिका पृ॰–2

– ''काव्य गीत नृत्य प्रधान उप रूपक होता है। इसमें आदि से अंत तक एक पात्र द्वारा एक कथा का श्रृंखलाबद्ध ग्रन्थन होता है। काव्य का गायन एक ही राग में होता है। एवं लय और ताल भी अपरिवर्तित रहते हैं।[55] फलतः रस भी प्राय एक ही रहता है, यह राग काव्य कहलाता है।''[56] इसके विपरीत कोहल एवं भोज का मानना है कि – ''जिसमें राग और काव्य परिवर्तित होते रहते है। वह चित्र काव्य कहलाता है। 'गीत गोविन्द' इसी प्रकार का चित्र काव्य है जिसे जयदेव की पत्नी ने स्वयं अभिनय के माध्यम से प्रस्तुत किया था।''[57] यदि काव्य तत्त्व की प्रधानता से युक्त नाटकों को नाट्य–काव्य या काव्य रूपक नाम दिया जाए तो यह भ्रामक होगा। नाट्य काव्य काव्य नाटक से भिन्न है क्योंकि इसमें न तो एक ही ताल होती है न एक ही रस होता है तथा इसका मुख्य रस हास्य भी नहीं होता है। इस दृष्टि से ऐसी विधाओं के लिए काव्य–नाटक या काव्य–रूपक नाम उचित प्रतीत नहीं होता।

महावीर प्रसाद द्विवेदी नाटक का उदगम वेदों से मानते हुए स्वीकार करते है कि ''यज्ञ–संवाद अभिनीत किये जाते थे। प्राचीन यज्ञ–संवादों में पद्य केवल उन स्थलों पर व्यवहत होते थे, जहाँ वक्ता का भावावेश तीव्र होता था। संस्कृत नाटकों में पात्र गद्य बोलते–बोलते जब भावावेश की स्थिति में आ जाता है तब पद्य बोलने लगता है।''[58] टी.एस. इलियट के शब्दों में – ''जो नाटककार कवि नहीं है, वह उसी मात्रा में नाटककार नहीं है।''[59] इससे स्पष्ट होता है कि टी.एस. इलियट भी इस विधा के लिए नाटकीय कविता तथा नाटय काव्य नाम का ही समर्थन कर रहे हैं। वे कवि के माध्यम से काव्य की महत्ता का प्रतिपादन कर रहे हैं। वहीं डॉ॰ कृष्ण सिंहल ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी गीति नाट्य' में स्वीकार किया है कि ''काव्य नाटक तथा काव्य रूपक में काव्य शब्द की व्याप्ति को देखते हुए इन नामों को भी बहुत समीचीन नहीं माना जा सकता।''[60] वहीं डॉ॰ नगेन्द्र के शब्दों में – '' निराला की 'पंचवटी प्रसंग' नामक कविता में हम गीति–नाट्य न कहकर नाटकीय कविता कहेंगे।''[61] जबकि परिमल में संकलित 'पंचवटी प्रसंग' की चर्चा काव्य नाटक के क्षेत्र में भी की जाती है। यहाँ डॉ॰ नगेन्द्र के सिद्धनाथ कुमार के काव्य नाटक शब्द को निराधार बताकर उसके लिए नाट्य कविता नाम दिया है। डॉ॰

---

[54] सुमित्रानन्दन पंत, रजत शिखर, शिल्पी और सौवर्ण (सभी काव्य–रूपक संग्रह) स्पष्टीकरण पृ॰ (क)
[55] सम्पा॰ डॉ॰ नगेन्द्र, नाट्य–दर्पण, पृ॰ 408
[56] डॉ॰ सुरेन्द्र नाथ दीक्षित, भारत और भारतीय नाट्य कला, पृ॰ 151–52
[57] डॉ॰ सुरेन्द्र नाथ दीक्षित, भारत और भारतीय नाट्य कला,पृ॰ 151–52
[58] महावीर प्रसाद द्विवेदी, नाट्यशास्त्र की परम्परा और दशरूपक, पृ॰ 45
[59] टी॰ एस॰ इलियट, दि सैलेक्टिड ऐसे, पृ॰ 58
[60] डॉ॰ कृष्ण सिंहल, हिन्दी गीति नाट्य (भूमिका) पृ ॰ 91
[61] डॉ॰ नगेन्द्र, आधुनिक हिन्दी नाटक, पृ॰ 109

सिद्धनाथ कुमार ने नाटकीय काव्य को ही काव्य का जन्माधार बताते हुए स्पष्ट किया है कि ''काव्य नाटक का जन्म नाटकीय कविता के ही रूप में हुआ है और वह पाठ्य रहा है।''[62]

डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा के अनुसार – ''जिस प्रकार कविता में लिखित कहानी काव्य कहानी नहीं कहलाती और न ही कविता में लिखा उपन्यास, काव्य उपन्यास कहलाता है, उसी प्रकार काव्य में लिखित नाटक काव्य नाटक नहीं कहला सकता।''[63] वर्मा जी की इसी बात का समर्थन करते हुए कहते हैंः– ''पद्यबद्ध होने के कारण कोई नाटक, काव्य नाटक नहीं हो जाता किसी उपन्यास को पद्यबद्ध कर देने से पर पोएटिक उपन्यास नहीं हो जाएगा।''[64] यहाँ सिद्धनाथ कुमार स्वयं ही काव्य नाटक को निराधार मानते हैं उनके अनुसार 'संशय की एक रात' और 'उर्वशी' संवादात्मक शैली में लिखित काव्य है अतः इनकी चर्चा नाटकीय काव्य की परम्परा से की जानी चाहिए। 'संशय की एक रात' नरेश मेहत्ता का काव्य है जिसमें राम और सीता की पौराणिक स्थिति की व्याख्या आधुनिक संदर्भ में की गई है। उर्वशी भी दिनकर का एक प्रसिद्ध काव्य है।''[65] यहाँ काव्य को ही प्रधानता प्रकट की गई है। डॉ॰ हुकम चन्द राजपाल ने अपनी पुस्तक 'नयी कविता की नाट्यमुखी भूमिका' में स्पष्ट कहा हैं – ''हमने नाट्य काव्य उस कृति को स्वीकार किया है, जिसकी मूल चेतना काव्य है तथा बाह्य विधान नाटकीय।''[66] इनके अनुसार हिन्दी में ऐसी रचनाएँ नाट्य–काव्य हैं, जो मूलतः काव्य हैं संवेदना की तीव्र अनुभूति के लिए उसमें नाटकीय आधार अपनाया गया है। ''काव्य की नाटकीय शैली अथवा नाट्य शैली में अभिव्यक्ति ही – नाट्य काव्य कहलाएगा।''[67] डॉ॰ हरिशचनद्र वर्मा भी ऐसी कृतियों को नाट्य काव्य नाम देना ही अधिक उचित समझते हैं उनका अभिमत है कि ''नाट्य काव्य एक विशिष्ट विधा है।''[68] सामान्यतः काव्य नाटक का अर्थ छन्दोबद्ध नाटक से लिया जाता है किन्तु डॉ॰ सिद्धनाथ कुमार किसी नाटक के छन्दोबद्ध होने पर ही उसे काव्य नाटक नहीं मानते। उनके अनुसार काव्य नाटक की आत्मा उसकी कथावस्तु, उसके पात्र, सबके सब काव्यमय होते हैं। और उसमें आवेगों और अनुभूतियों की तीव्रता के कारण छन्दोंबद्ध लयपूर्ण और अलंकृत भाषा का व्यवहार अनिवार्य है।''[69] स्पष्ट है कि काव्यत्व से परिपूर्ण छन्दोबद्ध नाटक को ही काव्य नाटक मानते हैं जबकि हम स्पष्ट कर चुके है कि काव्यत्व और नाट्यत्व के सम्मिश्रण से रचित छन्द–मुक्त कविता में लिखे गए नाटक ही काव्य नाटक होते हैं। डॉ॰ माया मलिक ''धर्मवीर भारती कृत अंधायुग को नाट्य–बोध की अपेक्षा काव्य तत्त्व की प्रधानता

---

[62] डॉ॰ सिद्धनाथ कुमार, हिन्दी पद्य नाटक : सिद्धान्त और समीक्षा, पृ॰ 65
[63] डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा, नयी कविता के नाट्य–काव्य, पृ॰ 22
[64] डॉ॰ सिद्धनाथ कुमार, हिन्दी नाटक : सिद्धान्त और समीक्षा, पृ॰ 54
[65] वही, पृ॰ 54
[66] डॉ॰ हुकुचन्द राजपाल, नयी कविता की नाट्य मुखी भूमिका, पृ॰ 25
[67] वही, पृ॰ 25
[68] डॉ॰ हरिश्चनद्र वर्मा, नयी कविता के नाट्य काव्य, पृ॰ 57
[69] सम्पा॰ डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश भाग–1, पृ॰ 254–55

के कारण ही काव्य नाटक की अपेक्षा नाट्य–काव्य कहना अधिक समीचीन लगता है।''[70] इनके अनुसार काव्य तत्त्व एवं नाट्यतत्त्व दोनों की विद्यमानता अनिवार्य है परन्तु नाट्य काव्य में काव्य तत्त्व की प्रधानता सर्व स्वीकृत है। अतः इसे लिए काव्य–नाटक एवं काव्य–रूपक नाम अधिक उपयुक्त नहीं है।

1.3.4 गीति नाट्य :

गीतिनाट्य का तात्पर्य है वह रचना जिसमें गीत अधिक हो या वह नाटक जो केवल गीतों पर ही आधारित हो, जिसमें गेय शब्दों का प्राधान्य हो। बृहत् हिन्दी कोश के अनुसार – गीति नाट्य ''वह नाटक है जिसमें पद्य या गाने की चीजों की प्रधानता हो।''[71] वेदपाल खन्ना की मान्यता है कि ''साधारण रूप में गीति नाट्य से उस नाटक का अभिप्राय है, जो पूरा पद्य में लिखा जाता है। किन्तु गीति नाट्य के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं कि उसका माध्यम गद्य न होकर पद्य हो। गीति नाट्य के लिए पद्य की अनिवार्यता के साथ–साथ भाव प्रचुरता भी आवश्यक है भाव प्रधानता के कारण इसमें सम्भवतः कार्य एवं बाह्य संघर्ष इतना अधिक नहीं होता। इसमें जो द्वन्द्व मिलता है वह, अर्न्तद्वन्द्व है अर्थात् एक ही पात्र के मन में विविध भावनाओं के बीच संघर्ष।''[72] इन साइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका के अनुसार – गीति में व्यैक्तिक एवं आनन्दकारी भावों का समावेश होता है जिसके कारण उनमें प्राणों का स्पन्दन होता है। गीति काव्य का प्रधान उद्देश्य, अतरंग जीवन के रहस्यों, आकांक्षाओं, उमंगों, वेदनाओं और प्रलाप को उदघाटित करना होता है।''[73] महादेवी वर्मा ने गीति को परिभाषित करते हुए लिखा है ''सुख–दुख की भावावेशमयी अवस्था विशेष का गिने चुने शब्दों में स्वर सन्धान के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीति है।''[74] उक्त परिभाषा को स्पष्ट है कि गीति में व्यक्ति के निजी सुख–दुख की भावनाओं के प्रकाशन की अभिव्यक्ति प्रमुख होती है, किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि वे सुख–दुख दूसरे के सुख–दुख नहीं बन पाते। उनमें भी निजत्व की सीमा का अतिक्रमण करके व्यापकता तथा 'समाज' तक उठ जाता है। इसके अतिरिक्त भावात्मकता, संक्षिप्तता, संगीतात्मकता और भावानुकूल भाषा गीत के अन्य अनिवार्य तत्त्व हैं। अतः उपर्युक्त गीति तत्त्वों से युक्त नाटकीय रचना ही गीति नाट्य मानी जा सकती है।

उदयशंकर भट्ट के मतानुसार – ''कविताबद्ध नाटकों को इतिहास में गीति नाट्य की संज्ञा भी दी गई है। इन नाटकों में मानव के हृदय में संचारी भावों का अभिव्यक्तिकरण होता है क्रिया इनमें है पर सामान्यतः नाटकों की भाँति नहीं इसमें क्रिया मानसिक है। इसी से भावों का

---

[70] डॉ॰ माया मलिक, अंधा युग रचना धर्मिता के विविध आयाम, पृ॰ 70
[71] सम्पा॰ कालिकाप्रसाद, राजवल्लभ सहाय, मुकुन्दी लाल श्री वास्तव, बृहत हिन्दी कोश, पृ॰ 324
[72] डॉ॰ देवपाल खन्ना, हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन, पृ॰ 277
[73] इनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका, ग्रन्थ, पृ॰ 81
[74] डॉ॰ राम प्रकाश, समीक्षा सिद्धान्त, पृ॰ 39

उत्थान पतन होता है, जहाँ गीति पद्य में स्वरस भावों का संचालन होता है, उसे गीति नाट्य कहते हैं।''[75]

डॉ॰ नगेन्द्र ने गीति नाट्य को परिभाषित करते हुए गीति नाट्य के स्वरूप पर इस प्रकार प्रकाश डाला है। ''गीति नाट्य रूपक का ही एक भेद है। जिसका प्राण तत्त्व है – भावना तथा मन का संघर्ष और माध्यम है – कविता गीति तत्त्व व्यक्तिगत चेतना में ही मिलता है उसमें जीवन का बहिरंग नहीं, अतरंग की व्यक्तिगत अनुभूति होती है। व्यक्ति का तरल प्रवाहमान रूप गीति काव्य को जन्म देता है ' व्यक्ति का विरोधी तत्त्वों के बीच तना हुआ द्वन्द्वमय रूप गीति नाट्य है।''[76] जबकि नाट्य–काव्य में काव्य प्राण तत्त्व है और माध्यम–नाटक है। उसमें काव्य को महत्ता दी गई हैं।

डॉ॰ शकुन्तला दूबे के अनुसार ''गीति नाट्य ऐसा काव्य रूप है जिसकी मूल भावना एवं शैली आत्माभिव्यंजक होती है, और नाटकीय कथोपकथन के आधार पर पात्रों की भावाभिव्यंजना एवं कथासूत्र को आगे बढ़ाया जाता है।''[77] जब कवि दृश्य–काव्य का सहारा लेकर गीतात्मक रूप में अपनी अनुभूति को संजोता है, तब उस बाह्य अभिव्यंजना को गीति–नाट्य की संज्ञा दी जाती है।''[78] उक्त परिभाषाओं में लेखिका ने गीति–नाट्य को काव्य–रूप एवं दृश्य–काव्य स्वीकार किया है। नाट्य काव्य में भी काव्य की ही महत्ता स्वीकार की गई है। डॉ॰ सुरेश चन्द्र गुप्त के अनुसार – ''दृश्य–काव्य में दृश्य शब्द नाटक के लिए रूढ हो गया है।''[79] डॉ॰ माया मलिक का भी यही मानना है कि ''दृश्य–काव्य में दृश्य शब्द नाटक के लिए एवं काव्य शब्द कविता के लिए प्रयोग होता है। इसलिए डॉ॰ धर्मवीर भारती ने अपनी कृति अंधायुग को दृश्य–काव्य नाम दिया है।''[80] डॉ॰ सावित्री सिन्हा ने नाट्य काव्य का स्वरूप गीति नाट्य से भिन्न स्वीकार किया है। उनके अनुसार ''संवादात्मक कविता केवल पाठ्य होती है। उसका अभिनय नहीं हो सकता। संवादात्मक कविता में नाट्य तत्त्व अत्यन्त गौण होता है इसके विपरीत गीतिनाट्य अभिनेय होता है, उसमें नाट्य तत्त्वों की प्रधानता रहती है, गीति नाट्य भाव प्रधान होते हैं।''[81] डॉ॰ सावित्री सिन्हा के इस मत से सहमत नहीं हुआ जा सकता कि नाट्य कविता केवल पाठ्य है। जबकि नाट्य काव्यों का सफलतापूर्वक मंचन किया जा चुका है।

डॉ॰ शिव शंकर कटारे गीति नाट्य में पद्यबद्धता को अनिवार्य मानते हुए इसे एक मिश्र विधा स्वीकार करते हैं – ''गीति नाट्य वह मिश्र विधा है, जो अनिवार्यतः पद्यबद्ध होती है और

---

[75] डॉ॰ उदय शंकर भट्ट, विश्वामित्र और दो भावनाट्य स्पष्टीकरण, पृ॰ क
[76] डॉ॰ नगेन्द्र, आधुनिक हिन्दी नाटक, पृ॰ 125
[77] डॉ॰ शकुन्तला दूबे, काव्य रूपों के मूल स्त्राोत और उनका विकास पृ॰ 38
[78] वही, पृ॰ 534
[79] डॉ॰ सुरेशचन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य, विविध परिप्रेक्ष्य, पृ॰ 104
[80] डॉ॰ माया मलिक, अंधायुगः रचना धर्मिता के विविध आयाम, पृ॰ 68
[81] डॉ॰ सावित्री सिन्हा, नव्य हिन्दी नाटक,पृ॰ 196

जिसमें गीति काव्य की आत्मा भिव्यंजना, भाव–प्रवणता, गीतात्मकता, मानसिक संवेदना, अन्तर्द्वन्द्व और कवि की रसात्मक अनुभूति के साथ, नाटकीय दृश्य–विधान, अभिनेयत्व, रंग–निर्देश और कथोपकथन शैली में मानसिक व्यापार का मणिकांचन सहयोग होता है। भावाभिव्यंजना, संघर्ष, गेयत्व और वृत्त गंधी कथोपकथन उसकी अपनी विशेषताएं हैं।''[82] जबकि काव्य तत्त्व एवं नाट्य तत्त्व के समन्वित रूप को विवेचित करते हुए 'नाट्य विमर्श' में नर नारायण राय ने लिखा है कि ''इस प्रकार की कृतियों में ''गीतितत्त्व काव्यात्मक पक्ष है और नाट्यत्व अभिनेय पक्ष, नाटकीय पक्ष।... अगर काव्यात्मकता और नाटकीयता दोनों का समन्वय अनुपातिक रहा तो वह एक सफल गीति नाट्य बन जाता है।''[83] इन्होंने गीति तत्त्व को काव्य स्वीकार किया है और नाटक का संबंध नाटकीय पक्ष से बताते है। ये काव्य एवं नाटक दोनों का समन्वय स्वीकारते हैं। डॉ॰ ज्ञान सिंह मान के मतानुसार – गीति नाट्य का तात्पर्य है ''वह रचना जिसमें गीत अधिक हों या वह नाटक जो केवल गीतों पर ही आधारित हो, जिनमें गेय शब्दों का प्राधान्य हो। गीति नाट्यों में प्रचुर काव्य–सौष्ठव तथा गेय तत्त्व रहना चाहिए।''[84] उक्त परिभाषा में नाटक शब्द पर बल दते हुए गेय तत्त्वों की प्रधानता को स्वीकार किया गया है। जबकि अंधायुग जैसी कृतियाँ जिनकी समीक्षा गीति नाट्य कहकर की गई है उनमें कहीं भी गीतियों की कोई प्रचुरता नहीं हैं।

डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा ने 'गीति' और 'नाटक' को दो विरोधी धाराएँ स्वीकार किया है उनके मतानुसार – ''गीति और नाटक दो स्वभावतः विरोधी विधाएँ है – नाटक एक प्रबन्धात्मक विधा है, जिसमें एक सुसम्बध वस्तु–व्यापार का आश्रय लिया जाता है और गीति एक मुक्तक रचना है, जिसमें किसी कवि या पात्र की किसी एक तीव्र अनुभूति का सहज उच्छलन होता है अतः वस्तु–व्यापार को लेकर चलने वाली किसी भी विधा का सांगोपाग निर्वाह गीति के माध्यम से नहीं हो सकता ऐसा करने पर गीति–गीति न रहकर प्रबन्ध–काव्य का रूप लेने को विवश हो जाएगी।''[85] डॉ॰ सिद्धनाथ कुमार भी डॉ॰ वर्मा जी के विचारों से सहमत प्रतीत होते हैं। उनके शब्दों में – ''हमारे साहित्य में तथाकथित गीतिनाट्यों में गीति तत्त्व की प्रधानता नहीं है गीति तत्त्व और नाटकीय तत्त्व दो अलग विधाएँ है। मात्र गीति तत्त्व से नाटक की रचना सम्भव नहीं होती तथा कथित गीति नाट्यों में काव्यत्व भी रहता है, छन्दोबद्धता भी।''[86]

डॉ॰ हुकुमचन्द राजपाल के शब्दों में ''गीति नाट्य में गीति की प्रमुखता नहीं, नाट्य ही मूल रहता है 'उर्वशी' को भी यदि गीतों के नाटकीय आधार पर इस नाम से अभिहीत करना था तो इसे नाट्य–गीति नाम दिया जाना तो समझ आ सकता है, पर गीति नाट्य समझ में नहीं

---

[82] डॉ॰ शिव शंकर कटारे, हिन्दी गीति नाट्य सिद्धान्त और समीक्षा, पृ॰ 39
[83] नरनारायण राय, नाट्य विमर्श, पृ॰ 20
[84] डॉ॰ ज्ञान सिंहमान, नाटक काव्यात्मक परिवेश, पृ॰ 28
[85] डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा, नयी कविता के नाट्य काव्य, पृ॰ 57–58
[86] डॉ सिद्धनाथ कुमार, हिन्दी काव्य नाटक, एक सर्वेक्षण, पृ॰ 72

आता। कारण दिनकर जी का मूलतः कवि होना है।''[87] उक्त परिभाषा के स्पष्ट है कि यदि गीति नाट्य में प्रधानता नाटक को ही दी जाती है तो गीति–नाट्य लिखने वाले सभी रचनाकार जयंशकर प्रसाद, धर्मवीर भारती, सुमित्रानन्दन पंत, रामधारी सिंह दिनकर, नाटककार न होकर मुख्यतः कवि ही हैं। जिन्होंने काव्य में श्रेष्ठता प्राप्त की है।

निष्कर्षतः गीति शब्द काव्य की अपेक्षाकृत अधिक संकुचित है तथा इसे नाटक का एक अंश स्वीकार किया गया है जबकि काव्य शब्द व्यापक है एवं गीति को अपने अन्दर ही समेटे हुए प्रतीत होता है। जिन नाटकों में केवल गीतियाँ ही हो उन्हें हम भले ही गीति–नाट्य नाम दे परन्तु जिन कृतियों में काव्यत्व प्राण है और शैली नाटकीय हैं वे नाट्य–काव्य नाम से ही अभिहीत की जानी चाहिए।

1.3 नाट्य–काव्य एवं काव्य–नाटक

ऐसी कृतियाँ जिनका प्राण काव्य तत्त्व है और बाह्य स्वरूप नाटकीय। उन्हें नाट्य काव्य या काव्य–नाट्य किस नाम से अभिहित किया जाए। यह मतभेद विद्वानों में अक्षर देखने को मिला है। डॉ प्रोमिला सिंह के मतानुसार ''नाट्य–काव्य में काव्य को ही प्रधानता मिलती है अतः इसे काव्य नाटक का पर्याय नहीं माना जा सकता क्योंकि काव्य–नाटक में नाटकीयता का तत्त्व आगे–आगे चलताहै और काव्यात्मकता क्षीण गति से उसका अनुसरण करती है।''[88] नाट्य–काव्य और काव्य–नाटक के अन्तर्गत व्याप्त विविधता को इन शब्दों में अभिव्यक्ति दी जा सकती है। नाट्य–काव्य के अन्तर्गत यदि 'अंधायुग' को रखा जा सकता है तो काव्य नाटक के अन्तर्गत 'चन्द्रगुप्त' एवं 'स्कन्दगुप्त' को रखा जा सकता है। टी.एस. इलियट का नाट्य काव्य की रचना प्रक्रिया के बारे में स्पष्ट अभिमत है कि – ''संवेदना का विशिष्टम क्षेत्र अधिकतम तीव्रता के क्षणों में नाटकीय कविता (नाट्य–काव्य) में ही व्यक्त हो सकता है।''[89] भारतीय नाट्य शास्त्र में नाट्य को दृश्य काव्य कहा गया है। नाट्य काव्य कहें या दृश्य–काव्य दोनों से नाट्य काव्य का ही बोध होता है। श्री सिद्धनाथ कुमार ने 'सृष्टि की सांझ और काव्य नाटक' में भूमिका में इस विधा के स्वरूप पर प्रकाश डाला है ''काव्य तत्त्व और नाटक तत्त्व इसमें आकर एक ऐसे रूप विधा की सृष्टि कर देते हैं। जिसमें काव्यत्व के कारण मानव के राग तत्त्व बड़ी स्पष्टता से उभर कर आते हैं, भावनाएँ और अनुभूतियाँ अपनी तीव्र और वेगवती धारा में हमें अपने साथ बहा ले जाती है.... नाटक तत्त्व इसका बाह्य स्वरूप निर्मित करता है। काव्य तत्त्व इसमें आत्मा की स्थापना करता है। नाटक तत्त्व कथानक का निर्माण करता है और काव्य तत्त्व

---

[87] डॉ॰ हुकुमचन्द राजपाल, नयी कविता की नाट्य मुखी भूमिका, पृ॰ 10
[88] डॉ॰ प्रोमिला सिंह, स्वातन्त्र्योतर गीति नाट्य–काव्य,पृ॰ 27
[89] T.S. Eliot, On Poetry and Poets, P. 87

इसमें अनुभूतियों का दान देता है।''[90] उक्त परिभाषा में सिद्धनाथ कुमार ने काव्यत्व को ही आत्मा माना है जबकि नाट्यत्व को कथानक का निर्माण करने वाला तत्त्व स्वीकार किया है। वहीं प्रो॰ एच॰ ए ॰ वीयर्स का विवेच्च विधा के विषय में मत है कि – ''ये नाटक पाठ्य हैं, अभिनय नहीं। अभिनेय नाटकों की अपेक्षा इनकी शैली अधिक अलंकृत, भाव सम्बल और भाषण प्रौढ़ होते हैं।[91] हैजलिट एवं लैम्ब ने प्रो॰ वीयर्स के कथन का विरोध करते हुए कहा है कि – ''काव्य–रूपक को नाटक मानना, नाटक के साथ अन्याय करना है, इन्हें नाटक नहीं नाटकीय काव्य ही कहना चाहिए।''[92] काव्य नाटक के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से समर्थक टी.एस. इलियट स्वयं 'ड्रैमेटिक पोपट' की कृति के लिए 'पोयटिक ड्रामा' का प्रयोंग करते हैं।''[93] वहीं वे कहते है कि ''सारी कविता नाटक की और प्रवृत्त होती है और सारे नाटक कविता की ओर प्रवृत होते हैं।''[94] इलियट के इस कथन से स्पष्ट है कि ऐसी रचनाएँ गद्य नाटककार के सामर्थ्य से परे हैं, कवि ही ऐसी कृतियों की रचना करना कर सकता है और कवि द्वारा रचित कृति को ही काव्य कहना उचित है। इस दृष्टि से इन्हें नाटकीय काव्य या नाट्य–काव्य नाम से ही अभिहित करना उचित प्रतीत होता है। इलियट के अनुसार जो नाटककार कवि नहीं है, वह नाटककार के रूप में उतना ही घटिया है।''[95]

हिन्दी साहित्य जगत में नाट्य–काव्य नाम प्रतिष्ठित एवं मान्य हो चुका है। इसलिए इसकी समीक्षा अनिवार्य है। नाट्यकाव्य के प्रस्तावकों के आग्रह से लगता है कि जैसे वे इसे कोई नया नाम दे रहे हैं परन्तु नाट्य–काव्य नाम नया नहीं है। भारतीय नाट्य शास्त्र में नाट्य को दृश्य–काव्य कहा गया है नाट्य–काव्य कहें या दृश्य–काव्य बात एक ही है – ''नाट्य–काव्य ही है। यह मान्यता पश्चिम में भी यथार्थवादी आंदोलन के पहले तक रही और उसके बाद भी बनी हुई है। यथार्थवादी आंदोलन के पहले तक नाट्य का अर्थ काव्य ही था। उसके पहले या बाद में काव्य जोड़ने की कोई आवश्यकता एवं सार्थकता ही नहीं समझी गई।''[96] वहीं आचार्य बलदेव ने भी अपनी पुस्तक 'संस्कृत नाटक' में ऐसी कृतियों को 'नाटकीय–काव्य' कहा है इनके अनुसार ''संस्कृत के रूपक नाटक न होकर नाटकीय काव्य ही हैं। संस्कृत नाटकों में कवित्मय वातावरण है।''[97] विभिन्न विद्वानों में मतभेद के चलते विवेच्य विधा को नाटकीय काव्य या काव्य–नाटक नाम दिया गया है। यहाँ काव्य नाटक मानने वाले सिद्धनाथ कुमार ने स्वयं स्वीकार किया है कि – ''विवेच्य साहित्य रूप का अनिवार्य तत्त्व है –

---

[90] डॉ॰ श्री सिद्धनाथ कुमार, सृष्टि की सांझ और अन्य काव्य नाटक पृ॰ 94
[91] डॉ॰ रघुवंशी, पद्यनाटक की विशेषताएं, पृ॰ 85
[92] वही, पृ॰ 85
[93] T.S. Eliot, The Selected Essays, P . 55
[94] वही, पृ॰ 52
[95] वही, पृ॰ 52
[96] डॉ॰ सिद्धनाथ कुमार, हिन्दी पद्य नाटक : सिद्धान्त और समीक्षा, पृ॰ 11
[97] आचार्य बलदेव उपाध्याय, संस्कृत नाटक, पृ॰ 12

काव्यत्व। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर लेखक ने इसे काव्य–नाटक नाम दिया है।''[98] यहाँ लेखक ने स्वयं ही काव्य की महत्ता को स्वीकार किया है। जनवरी 1966 के माध्यम से विजय कुमार शुक्ल ने भी लिखा था कि इस साहित्य रूपक को नाट्य–काव्य कहना चाहिए। डॉ॰ ज्ञानसिंह मान ने भी ऐसी कृतियों को नाट्य–काव्य नाम से अभिहित कहते हुए कहा है कि – ''कविता युक्त नाटकों से अभिप्राय ऐसे नाटक से है, जिनमें काव्यात्मक वातावरण की सृष्टि के लिए कविता का प्रयोग किया जाता है, ऐसे विशिष्ट नाटकों को आलोचकों ने नाट्य–काव्य नाम से अभिहित किया है।''[99]

डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा के मतानुसार ऐसी कृतियाँ जिनमें काव्य तत्त्व की प्रधानता होती है, और शिल्प विधान नाटकीय होता है उन्हें नाट्य–काव्य नाम देना सार्थक एवं न्यायसंगत है उन्हीं के मतानुसार – ''कविता में लिखा कोई भी प्रबंध चाहे वर्णनात्मक शैली में लिखा गया हो या नाटकीय शैली में काव्य ही कहलाएगा। जायसी के पदमावत को प्रेम गाथा–काव्य तो कहा जाता है किन्तु 'काव्य–उपन्यास' नहीं कहा जा सकता और न ही 'रामचन्द्रिका' को नाटकीय तत्त्वों से युक्त होते हुए काव्य नाटक कहा जा सकता है। प्रतीकात्मक तथा नाटकीय शैली में लिखे हुए आधुनिक काव्यों को काव्य कहना युक्ति युक्त है। हाँ उनके नाट्य गुणों को लक्षित करने के लिए उन्हें नाट्य–काव्य नाम देना और भी अधिक सार्थक एवं समीचीन हैं।''[100] हम डॉ॰ वर्मा जी की इस बात से सहमत हैं क्योंकि जिस प्रकार कविता में लिखी कहानी काव्य–कहानी नहीं कहलाती और न ही काव्य में लिखा उपन्यास काव्य–उपन्यास नहीं कहलाता है वैसे ही काव्य में लिखा नाटक काव्य–नाटक नहीं कहला सकता। यदि उसमें नाटकीयता ही प्रमुख हो तो वह नाटक पहले है और काव्य बाद में। जबकि काव्य की नाटकीय शैली में अभिव्यक्ति के लिए नाट्य–काव्य नाम ही अधिक उपयुक्त है। नाट्य–काव्य नाम की प्रस्थापना करते हुए डॉ॰ वर्मा ने भी यहीं कहा है कि – ''नाट्य–काव्य की रचना कर सकता है। गद्य नाटक लिखने वाला कोरा गद्यकार है वह कविताबद्ध नाटक नहीं लिख सकता।''[101] पद्यनाटक और कविताबद्ध नाटक का व्यावर्तक तत्त्व कवित्व है वही परिस्थिति, पात्रों और भाषा के स्वरूप को भी निर्धारित करता है कवित्व ही दोनों का मूल भेदक तत्त्व होने के कारण प्रबन्ध काव्यों को काव्य नाटक, पद्यनाटक, गीति नाट्य, भावनाट्य आदि नाम न देकर 'नाट्यकाव्य' कहना ही अधिक न्यासंगत एवं वैज्ञानिक है।''[102]

नाट्य–काव्य और काव्य–नाट्य के साम्य में विचार करने पर अब इनके वैषम्य पर भी विचार करना अनिवार्य है। डॉ॰ हुकमचन्द राजपाल ने अपनी पुस्तक 'विविध बोध : नये हस्ताक्षर'

---

[98] सिद्धनाथ कुमार, सृष्टि की सांस और अन्य काव्य नाटक, पृ॰10
[99] डॉ॰ ज्ञानसिंह मान, नाटक : काव्यात्मक परिवेश, पृ॰ 51
[100] डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा, नयी कविता के नाट्य–काव्य, पृ॰ 60
[101] डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा, नयी कविता के नाट्य काव्य, पृ॰ 56
[102] वही, पृ॰ 56

में काव्य–नाटक एवं नाट्य काव्य में पर्याप्त अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है – '' इन दोनों में इतना अन्तर है जितना साध्य और साधन में होता है। नाट्य–काव्य में काव्य साध्य है और नाटक साधन (गौण) है तथा काव्य–नाटक में नाटक साध्य (मुख्य) है एवं काव्य साधन है।''[103] वहीं वे अपनी पुस्तक 'नयी कविता की नाट्य मुखी भूमिका' में कहते है कि – ''हमारी दृष्टि में नाट्य काव्य में नाट्य माध्यम है और काव्य मूल, काव्य–नाटक में काव्य माध्यम है और नाटक मूल।''[104] डॉ॰ हरिशचन्द्र वर्मा ने अपनी पुस्तक ''नयी कविता के नाट्य काव्य' में कहा है कि ''काव्य नाटक नाम से नाटक की प्रस्थापना होती है काव्य की नहीं।''[105] जबकि नाट्य–काव्य में काव्य को ही प्रधानता मिलती है अतः इसे काव्य–नाटक का पर्याय नहीं माना जा सकता। हिन्दी साहित्य कोश में ''नाट्य–काव्य को कविता का रूप माना गया है जिसकी संरचना (रूप विधान) नाटकीय होती है।''[106] डॉ॰ ज्ञान सिंह मान ने भी ऐसी रचनाओं में काव्य को मूल मानते हुए लिखा है – ''हिन्दी में ऐसी रचनाएँ नाट्य काव्य है जो मूलतः काव्य हैं तथा संवेदना की तीव्र अभिव्यक्ति के लिए उनमें नाटकीय आधार अपनाया गया है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि काव्य की नाट्य या नाटकीय शैली में अभिव्यक्ति ही नाट्य–काव्य कहलाएगा।''[107] रूप एवं अभिव्यंजना की दृष्टि से डॉ॰ हरिश्चनद्र वर्मा ने अंधा युग, एक कण्ठ विषपायी, सूखा–सरोवर, संशय की एक रात, अग्निलीक आदि रचनाओं को नाट्य–काव्य स्वीकार किया है।''[108] वहीं डॉ हुकुमचन्द राजपाल ने उर्वशी, आत्मजयी, अंधायुग, एक कंठ विषपायी, संशय की एक रात आदि कृतियों को नाट्य–काव्य कहकर उनकी समीक्षा की है।''[109]

वस्तुतः ऐसी कृतियाँ जो काव्यात्मक गुणों से परिपूर्ण होने के साथ–साथ नाटकीय संवादात्मक शिल्प का आश्रय ग्रहण करती है, वे वास्तव में नाट्य काव्य कहलाने की अधिकारिणी है। ऐसी कृतियों के लिए काव्य–नाटक की अपेक्षा नाट्य–काव्य नाम ही सभी दृष्टियों से सार्थक प्रतीत होता है। अतः ऐसी कृतियों को 'नाट्य–काव्य' की संज्ञा से विभूषित किया जाना चाहिए।

1.5 नाट्य–काव्य : स्वरूपगत अवधारण एवं विशेषताएँ

हिन्दी में ऐसी रचनाएँ नाट्य काव्य कहलाती है जो मूलतः काव्य हैं तथा संवदेना की तीव्रता की अभिव्यक्ति के लिए उसमें नाटकीय आधार अपनाया गया है नाटकीयता एवं काव्य

---

[103] डॉ॰ हुकुमचन्द्र राजपाल, विविध बोध : नये हस्ताक्षर, पृ॰ 68
[104] डॉ॰ हुकुचन्द्र राजपाल, नयी कविता की नाट्य मुखी भूमिका, पृ॰ 16
[105] डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा, नयी कविता के नाट्य काव्य,पृ॰ 57
[106] डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश भाग–2,पृ॰ 934
[107] डॉ॰ ज्ञान सिंह मान, नाटकः काव्यात्मक परिवेश, पृ॰ 26–27
[108] डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा, नयी कविता के नाट्य–काव्य, पृ॰ 98–110
[109] डॉ॰ हुकुम चन्द्र राजपाल, नयी कविता की नाट्य मुखी भूमिका, पृ॰ 51

का सम्मिश्रण होने के कारण यह विधा सहृदय और कम सहृदय दोनों के भावोन्मीलन में समर्थ हैं। डॉ॰ कृष्ण सिंहल का अभिमत है – नाट्य काव्य में काव्य की गणना विधा में की गयी है, पर अभिनव कला की उपविधा में''[110] अर्थात् काव्य अभिनय की अपेक्षा अधिक सशक्त रूप में विधा में विद्यमान रहता है वैसे भी काव्य को सभी विद्वानों ने नाट्य की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली माना है, क्योंकि काव्य पढ़ने मात्र से ही उसका प्रभाव व्यक्त हो जाता है।

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार – नाट्य काव्य ''रूपकत्व और काव्यत्व का संगम स्थल है। काव्यतत्त्व और नाट्य तत्त्व इसमें आकर एक ऐसे स्वरूप विधान की सृष्टि कर देते हैं। जिसमें काव्यत्व के कारण मानव जीवन के राग तत्त्व बड़ी स्पष्टता से उभरकर आते हैं। भावनाएँ एवं अनुभूतियाँ अपनी तीव्र और वेगवती धारा में हमें अपने साथ बहा ले जाती हैं।''[111] नाट्य–काव्य की विधा की सफलता के कारणों का उल्लेख करते हुए ज्ञान सिंह ने अपेन विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं – ''नाटकीय पद्य संवाद का प्रभाव और सफलता इसी में निहित है कि वह कविता एवं नाटक दोनों की मांग पूरी करे। इन संवादों में वे गुण विद्यमान हो जो श्रेष्ठ काव्य में पाए जाते हैं। साथ ही वे नाटक के प्रमुख ध्येय चरित्र, कथा, कार्य के उद्घाटन में भी सहयोगी बनें।''[112] यहाँ काव्य और नाट्य का दोहरा उत्तरदायित्व नाट्य काव्यकार का दायित्व बन जाता है जोकि काफी दुरूह कार्य प्रतीत होता है, क्योंकि अक्सर जहाँ कविता का स्वरूप अधिक भावात्मक हो उठता है। वहाँ से नाटकीयता का तत्व स्वयं ही समाप्तमय प्रतीत होता है। जनवरी 1966 के माध्यम में विजयकुमार शुक्ल ने भी लिखा था कि इसी साहित्य रूप को नाट्य काव्य कहना चाहिए। डॉ॰ मायामलिक के मतानुसार – ''नाट्य–काव्य नामकरण करने पर नाटकीय तत्त्वों को लेकर रचित प्रबन्ध काव्य का जो प्रतिबिम्ब पाठक की चेतना में एकदम उभर कर आता है वह अन्य किसी नामकरण से सम्भव नहीं है। यही एक ऐसा नामकरण है जो नाट्य तत्त्वों से परिपूर्ण होने पर भी इसकी काव्यात्मक संवेदना से हमारा परिचय कराता है।''[113] इन्हीं विशेषताओं के कारण वे 'अंधायुग' को एक सफल नाट्य काव्य मानती हैं। उक्त परिभाषा के आधार पर कहा जा सकता है एक ऐसा काव्यरूप जिसमें काव्य प्रधान हो, नाट्य तत्त्व गौण वहीं नाट्य काव्य कहा जा सकता है। इस प्रकार नाट्य काव्य में काव्य ही प्रधान है। डॉ॰ शकुन्तला दूबे के शब्दों में – ''कवि अपने भावानुरूप सामग्री चुनकर तदुपरान्त इच्छानुसार शैली में पात्रों के हृदय और बुद्धि में उमड़े संघर्ष को यथावत चित्रित करने का सफल प्रयत्न करता

---

[110] डॉ॰ कृष्ण सिहंल, हिन्दी गीतिनाट्य, पृ॰ 5
[111] सम्पा॰ धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, भाग–1, पृ॰ 197
[112] डॉ॰ ज्ञानसिह मान, हिन्दी काव्य नाटकों में नाटकीयता का स्वरूप पृ॰ 122
[113] डॉ॰ माया मलिक, अंधायुग रचनाधर्मिता के विविध आयाम, पृ॰ 74

है। अतः बाह्य काव्य व्यापारों को इस विधा में उतना महत्त्व नहीं पाता, जितना आन्तरिक तत्त्वों को मिलता है।''[114]

डॉ॰ शंकरदेव अवतरें के अनुसार ''नाट्य–काव्य में कथोपकथन कवितामय होने की माँग करते हैं – यह शर्त इसलिए है कि नाट्य काव्य के प्रधान तत्त्व अर्न्द्वन्द्व को अभिव्यक्ति देने में गद्य की अपेक्षा कविता कहीं अधिक सशक्त माध्मय है। इसे प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं कि व्यैक्तिक अनुभूति और मानसिक संघर्ष की उच्छन्न पेचीदगी कविता का प्राण तत्त्व है।''[115] इस प्राण तत्त्व के सहारे नाट्यकाव्य सहजता से मानव मन की आत्मीयता प्राप्त करने में सफल हो जाता है।

डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा भी काव्यत्व प्रधान नाटकीय रचनाओं को नाट्य–काव्य नाम से अभिहित करते हैं। उन्हीं के शब्दों में – ''प्रतीकात्मक तथा नाटकीय शैली में लिखे हुए आधुनिक काव्यों को काव्य कहना युक्तियुक्त हैं, हाँ उनके नाट्य गुण को लक्षित करने के लिए उन्हें नाट्य–काव्य नाम देना अधिक सार्थक एवं समीचीन है.... नाटकीय शिल्प का प्राक्षय ग्रहण करने वाला काव्य पहले हे, नाटक बाद में'।''[116] उन्हीं के शब्दों में – ''कविता में लिखा हो या नाटकीय शैली में लिखे हुए आधुनिक काव्यों को काव्य' कहना ही उचित है। नाट्य काव्य की रचना गद्य नाटककार की सामर्थ्य से परे है। कवि ही ऐसी रचना कर सकता है।''[117] गद्य नाटक लिखने वाला कोरा गद्यकार कविताबद्ध नाटक नहीं लिख सकता।''[118] गद्य–नाटक एवं कविता–बद्ध नाटक का व्यावर्तक तत्त्व कवित्व है। इस प्रकार कवि द्वारा रचित कृति को 'काव्य' कहा जाता है परन्तु नाटकीय परिस्थिति का काव्यात्मक अभिव्यक्ति का उपादान होने के कारण वह नाट्य काव्य है। हैजलिट एवं लैम्ब के अनुसार – ''काव्य रूप को नाटक मानना नाटक के साथ अन्याय करना है। इन्हें नाटक नहीं नाटकीय काव्य ही कहना चाहिए।''[119] आचार्य बलदेव के मतानुसार – ''संस्कृत के रूपक नाटक न होकर नाटकीय काव्य हैं। संस्कृत नाटकों में कवित्मय वातावरण है।''[120]

श्री सिद्ध नाथ कुमार ने 'सृष्टि की साँझ और अन्य काव्य नाटक' में इस विधा पर प्रकाश डालते हुए लिखा है। – ''काव्य तत्त्व एवं नाट्य तत्त्व इसमें आकर एक ऐसे रूप विधान की सृष्टि कर देते हैं जिसमें काव्यत्व के कारण मानव के राग तत्त्व बड़ी स्पष्टता से उभर कर आते हैं। भावनाएँ और अनुभूतियाँ अपनी तीव्र और वेगवती धारा में हमें अपने साथ बहाकर ले

---

[114] डॉ॰ शकुन्तला दूबे, काव्य रूपों के मूल स्रोत एवं उनका विकास, पृ॰ 537
[115] डॉ॰ शंकरदेव अवतरे, साहित्य में काव्य रूपों का प्रयोग, पृ॰ 115
[116] डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा, नयी कविता के नाट्य–काव्य, पृ॰ 56
[117] वही, पृ॰ 56
[118] वही, पृ॰ 56
[119] डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा, नयी कविता के नाट्य काव्य, पृ॰ 54
[120] आचार्य बलदेव उपाध्याय, संस्कृत नाटक, पृ॰ 12

जाती हैं..... नाट्य तत्त्व इसका बाह्य स्वरूप निर्मित करता है काव्य तत्त्व इसमें आत्मा की स्थापना करता है। नाटक तत्त्व कथानक का निर्माण करता है, घटनाएँ देता है, संघर्ष देता है, पात्रों की सृष्टि करता है और काव्य तत्त्व इसमें अनुभूतियों का दान देता है।''[121] उक्त परिभाषा के आधार पर कहा जा सकता है कि काव्य तत्त्व आत्मा है और नाटक तत्त्व बाह्य स्वरूप का निर्माण करता है।

नाट्य काव्य के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि नाट्य काव्य मूलतः काव्य है तथा संवेदना की तीव्रता एवं गहनता अथवा बोधगम्यता हेतु नाटकीय सज्जा एवं शैली का प्रयोग किया जाता है। डॉ॰ हुकुमचन्द राजपाल का अभिमत है – ''नाट्य–काव्य एक विशिष्ट विधा है . ... नाट्य काव्य एक साथ पाठ्य है और अभिनेय भी, काव्य भी है और नाट्य भी, प्रबन्ध काव्य होने के नाते व्यक्तिपरक भी है। वस्तुतः नाट्य काव्य में नाटकीय तथा काव्यात्मक वस्तुपरक एवं व्यक्तिपरक, पाठ्य एवं रंगमंचीय सभी तत्त्वों का ऐसा जटिल संघात घटित होता है कि उनका पृथक–पृथक अस्तित्व नहीं रहता। कविमानस की सभी क्षमताओं–कल्पना बुद्धि का जैसा उत्कृष्ट संयोजन नाट्यकाव्य में संभव है, वैसा अन्य विधाओं में नहीं..... नाट्य काव्य काव्य में कवि अभिव्यक्ति तो करता है, किन्तु प्रत्यक्ष रूप में नहीं वरन् कथानक और पात्रों के माध्यम से प्रच्छन्न रूप में।''[122] इससे स्पष्ट है कि नाट्य काव्य मूलतः काव्य है तथा संवेदना की तीव्रता एवं गहनता हेतु नाटकीय सज्जा एवं नाट्य शैली का प्रयोग किया जाता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर नाट्य काव्य की विशेषताओं को इस प्रकार विश्लेषित कर सकते है

– नाट्य–काव्य का प्राण तत्त्व काव्य है।
– इसमें संश्लिष्ट तत्त्वों का संयोजन रहता है।
– यह एक विशिष्ट विधा है।
– एक साथ पाठ्य, अभिनेय, काव्य, नाट्य, वस्तु एवं व्यक्तिपरक होता है।
– काव्य की नाट्य शैली में अभिव्यक्ति है।
– कवि की आत्मामिव्यक्ति प्रत्यक्ष नहीं कथानक एवं पात्रों के माध्यम से प्रच्छन्न रूप में होती है।
– क्षमता, कल्पना, भावना और बुद्धि का उत्कृष्ट संयोजन एक साथ प्रस्तुत किया जाता है।

नाट्य और काव्य दो विधाओं के एक साथ संयोजन की प्रक्रिया ही इस विधा के सृजन का मूल कारण है यह संयोजन इतना उत्कृष्ट होता है कि इसमें पृथकता का आभास नहीं होता है। हाँ काव्य का प्राधान्य अवश्य रहता है। क्योंकि इसमें आत्मतत्त्व काव्य द्वारा ही निर्मित होता

---

[121] डॉ॰ सिद्धनाथ कुमार, सृष्टि की साँझ और अन्य काव्य नाटक, पृ॰ 94
[122] डॉ॰ हुकुमचन्द राजपाल, नयी कविता की नाट्य मुखी भूमिका, पृ॰ 15

है ''वस्तुतः काव्यशब्द अत्यन्त व्यापक है, गीति रचनाएँ भी इसके के अन्तर्गत आती है, इसी व्यापक सन्दर्भ को ध्यान में रखते हुए हम इस प्रकार की सभी रचनाओं को जिनकी मूल चेतना कविता है तथा कहीं–कहीं मधुर गीतियों से युक्त नाटकीय विधान का निर्वाह किया गया है।''[123] शकुन्तला दूबे भी नाट्य काव्य की विशेषताओं का उल्लेख इस प्रकार करती हैं – '' समुचित रूप से देखा जाए तो नाट्य काव्य ऐसा काव्य रूप है। जिसकी मूल भावना एवं शैली आत्माभिव्यंजक होती है और नाटकीय कथोपकथन के आधार पर पात्रों की भावाभिव्यंजना एवं कथासूत्र आगे बढ़ाया जाता है। अतः भावात्मक वस्तु, कथोपकथन शैली, आत्माभिव्यंजना ये तीन विशेषताएं गीति नाट्य की निर्धारित की जा सकती है।''[124] इससे स्पष्ट है कि ऐसी कृतियाँ जो नाटकीय संवादात्मक शिल्प का आश्रय ग्रहण करने के साथ–साथ काव्यात्मकता के गुणों से परिपूर्ण होती है, वे वास्तव में नाट्य–काव्य कहलाने की अधिकारिणी हैं। डॉ प्रोमिला सिंह के मतानुसार – ''नाट्य–काव्य का स्पष्ट स्वरूप यहीं बनता है कि ऐसा काव्य–रूप जिसमें काव्य प्रधान हो, नाट्य गौण, वही नाट्य काव्य कहा जा सकता है। हाँ अभिनय क्षमता इस विधा में आवश्यकता अवश्य होती है।''[125]

अतः नाट्य–काव्य की विवेचना एवं उसका स्वरूप निर्धारित करते हुए यह कहा जा सकता है कि हिन्दी में ऐसी रचनाएँ नाट्य–काव्य है जो मूलतः काव्य हैं तथा संवेदना की तीव्रता की अभिव्यक्ति के लिए उनमें नाटकीय आधार अपनाया गया है यदि हम इसे और अधिक स्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्ति देना चाहे तो इस प्रकार कह सकते है कि ''काव्य की नाटकीय शैली में अभिव्यक्ति अथवा नाट्य शैली में अभिव्यंजना को 'नाट्य–काव्य' की संज्ञा से विभूषित किया जा सकता है।

1.6 नाट्य–काव्य की परम्परा :

हिन्दी साहित्य में नाट्य–काव्य एकबारगी नई विधा नहीं है, वह इतिहास के दीर्घकालीन विकास का प्रतिफल है। एक और जहाँ वैदिक युग से रस प्राप्त करती हैं वहीं दूसरी और पाश्चात्य साहित्य से प्रेरणा लेकर प्राणवान होती हैं। नाट्य काव्य के स्रोतों में प्राचीन भारतीय साहित्य की झलक स्पष्ट है। यद्यपि इस विधा का विकास पाश्चात्य साहित्य से अनुप्रेरित है तथापि इसकी लम्बी परम्परा भारत में है यद्यपि इस परम्परा में धीरे–धीरे परिवर्तन आता गया। परिवर्तन किसी भी साहित्यिक विधा में सम्भव है। यद्यपि नाटक एवं कविता का घनिष्ठ संबध प्राचीन काल से ही रहा है। संस्कृत में भी नाटक एवं कविता के सामंजस्य के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं। संस्कृत के महाकाव्यों में उत्तम नाटकीयता एवं कविता की छटा दर्शनीय है। जहाँ

---

[123] डॉ॰ हुकुमचन्द राजपाल, नयी कविता की नाट्य मुखी भूमिका, पृ॰ 20
[124] डॉ॰ शकुन्तादुबे, काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास, पृ॰ 538
[125] डॉ॰ प्रोमिला सिंह, स्वातन्त्र्योत्तर गीति नाट्य काव्य, पृ॰ 25

क्रिया–व्यापार संवादात्मक भावपूर्ण शैली के माध्यम से प्रकट हुआ है। 'कालिदास' कृत रघुवंशम् का द्वितीय सर्ग, जिसमें नन्दिनी पर आक्रमण करने वाले मायावी सिंह और राजा दिलीप के मार्मिक संवाद नाटकीय कविता की श्रेष्ठ छवि प्रकट करते हैं। वही रघुवंशम् का षष्ट्म सर्ग इन्दुमती स्वयंवर नाटकीय कविता का श्रेष्ठ उदाहरण माना जा सकता है। नाटकीय एवं काव्यात्मक सम्भावनाओं से प्रभावित होकर ही हिन्दी के वर्तमान युग में कवि गिरिजाकुमार माथुर ने 'इन्दुमती' की रचना की जो 'धूप के धान' में संगृहीत है तथा इन्दुमती स्वयंवर के विषय में सुन्दर नाटकीय कविता का उदाहरण प्रस्तुत करती है। इसके अतिरिक्त 'कुमारसम्भव' नैषधचरित आदि काव्यों में भी ऐसे स्थल सुलभ है। जहाँ नाटकीय क्रिया–व्यापार के अनुकूल संवादात्मक शैली का आश्रय लिया गया है। संस्कृत के नाटक कवियों द्वारा ही लिखे गए है। जिनमें काव्य की प्रचुरता है। परन्तु एक भी नाटक पूर्णतः श्लोकबद्ध नहीं है। संस्कृत में उपलब्ध नाटकीय प्रसंगों एवं नाटकों में प्राप्त कविता से नाटक एवं कविता में संबध स्वतः ही सिद्ध हो जाता है।

व्यक्तिगत अनुभूति एवं वस्तुगत यथार्थ के विभिन्न संयोगों से विविध काव्य–रूपों का निर्माण होता है। कोई भी काव्य पूर्णतः नया न होकर आंशिक रूप से ही नया होता है और उसकी नवीनता व्यक्तिगत अनुभूति एवं वस्तुगत यथार्थ के नये अनुपात में घटित संयोग के स्वरूप पर निर्भर करती है। प्राचीन काव्य–संग्रह ऋग्वेद में भी नाटकीय कविता के श्रेष्ठ नमूने उपलब्ध हैं। ऋग्वेद के दशम् मण्डल में पुरूरवा और उर्वशी के प्रेम प्रसंग को लेकर लिखे गए सूक्त में मार्मिक तथा गत्यात्मक कार्य व्यापार से युक्त आख्यान भावपूर्ण संवादात्मक शैली में निबंद्ध हुआ है, जो उत्कृष्ट नाटकीय कविता का निदर्शन है।''[126] इसी मण्डल में यम–यमी का मार्मिक संवाद–सूक्त भी नाटकीय कविता का सुन्दर उदाहरण है।''[127] डॉ॰ सावित्री स्वरूप ने भी ऋग्वेद में पद्यात्मक संवादों की खोज करते हुए कहा हैं – ''ऋग्वेद में ऐसे अनेक पद्यात्मक संवादो का उल्लेख मिलता है। जिनमें नाट्य काव्य के तत्त्व विद्यमान हैं।''[128] जयशंकर प्रसाद ने सोमपान के अवसर पर एक अभिनय का प्रसंग स्रोत सूत्र से उद्घृत किया, जिसमें सोम विक्रेता एवं उध्वर्य का संवाद आता है।''[129] पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि वैदिक संवाद गद्य–पद्यात्मक थे।''[130] अभिनवगुप्त ने अभिनव भारतीय में 'राग–काव्य का उल्लेख किया है। उसने 'राघव विजय' और 'मारीच वध' को राग काव्य बताया है, जिनमें नृत्य अभिनय मिश्रित

---

[126] दे॰ ऋग्वेद (10, 95)
[127] दे॰ ऋग्वेद (10, 10)
[128] डॉ॰ सावित्री, नव्य हिन्दी नाटक, पृ॰ 196
[129] जयशंकर प्रसाद, काव्य कला और अन्य निबन्ध, पृ॰ 28
[130] देवर्षि सनाढ्य, हिन्दी के पौराणिक नाटक, पृ॰ 326

गीतात्मक अभिव्यक्ति की प्रधानता थी।''[131] यद्यपि इस काल में न नाटक का ही पूर्ण विकास था और न ही काव्य का फिर भी संस्कृत साहित्य ने वेदों से ही प्रेरणा प्राप्त की थी।

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल एवं रीतिकाल में कविता की अत्याधिकता रही है तुलसीकृत 'रामचरित मानस' में रावण–हनुमान–संवाद, अंगद–रावण संवाद, राम–परशुराम–संवाद, राम–भरत संवाद के रूप में नाटकीय कविता के श्रेष्ठ उदाहरण द्रष्टव्य हैं। इसी प्रकार रामलीला में भी नाटकीयता एवं कवित्व का अद्‌भुत समन्वय है। रामलीला का स्वरूप नाट्य काव्य जैसा ही हैं। ''अतिश्य काव्यात्मकता के कारण इसे काव्य ग्रन्थ भी कह दिया गया है।''[132] गेयत्व एवं अभिनेयत्व के सम्मिश्रण के कारण कि प्रतिवर्ष दशहरे के समय इसका मंचन किया जाता है। 'केशव' कृत 'रामचन्द्रिका' न तो नाटकीय दृष्टि से सफल है और न ही कवित्व की दृष्टि से। यद्यपि उसमें नाटकीय स्थलों की प्रचुरता है। साथ ही ऐसे स्थलों पर संवाद–शैली का आश्रय लिया गया है। ''सत्रहवीं शती के केशव के 'विज्ञान गीता' कृष्ण जीवन के 'करूणाभरण' हृदयराम के 'हनुमान नाटक' यशवंत सिंह के प्रबन्धचन्द्रोदय, अठाहरवीं शती के नेवाज कवि के 'शकुन्तला' देव के देवमाया प्रपंच, आलम के 'माधवानलकामकन्दला' और उन्नीसवीं शती के मनसाराम के 'रघुनाथ' रूपक, कृष्ण शर्मा साधु के रामलीला विहार नाटक हरिराम के जानकी रामचरित नाटक, ब्रजवासी दास के प्रबन्ध चन्द्रोदय नाटक जैसे नाटकों की परम्परा मिलती है।''[133] वस्तुतः ये कृतियाँ काव्य ग्रन्थ ही हैं, जो नाटकीय शैली में लिखी गई हैं। यद्यपि इनमें न काव्य का उत्कर्ष मिलता है और न ही नाटक का। डॉ॰ दशरथ ओझा के शब्दों में – ''पर ये वास्तव में नाममात्र के ही नाटक हैं ये या तो अधिकांश अनुवादित हैं या रामायण एवं महाभारत की कथाओं पर आधारित पद्यात्मक कृतियाँ है।''[134] स्पष्ट है कि प्राचीन काल में आधुनिक अर्थो में नाट्य–काव्य की रचना भले ही न हुई हो परन्तु काव्यत्व एवं नाटकीयता का सम्मिश्रण प्राचीन काव्य में स्पष्ट दिखलाई पड़ता है।

आधुनिक युग में हुए नाट्य–काव्यों की रचना एवं उनका रूपगत वैशिष्टय आधुनिक युग की संवेदना की जटिलता तथा अभिनय संबधी शिल्प और सुविधाओं के विकास पर निर्भर है। आधुनिक नाट्य–काव्यों को पाश्चात्य नाटकों का अनुकरण–मात्र नहीं माना जा सकता। क्योंकि हिन्दी के नये नाट्य–काव्यों में भारतीय साहित्य की भावपूर्ण, कवित्व प्रधान नाट्य–परम्परा भी ग्रथित रही है। प्राचीन भारतीय साहित्य में इस परम्परा के दर्शन होते रहे हैं हिन्दी के आधुनिक नाट्य काव्यों की परम्परा का अभ्युदय जयशंकर प्रसाद के 'करूणालय' से

---

131 शंकरदेव अवतरे, हिन्दी साहित्य में काव्य रूपों का प्रयोग, पृ॰ 91
132 लक्ष्मी सागर, वार्ष्णेय, आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ॰ 215
133 डॉ॰ दशरथ ओझा, नाटक, प्र॰सम्पा॰ डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, भाग–1, पृ॰ 381–382
134 वही, पृ॰ 382

माना जाता है।[135] डॉ॰ शकुन्तला दुबे ने भी करूणालय को हिन्दी का पहला नाट्य–काव्य स्वीकार किया है।''[136] डॉ॰ बच्चन सिंह भी लिखते है – ''यदि अमानत की 'इन्दर–सभा' को छोड़ दिया जाए तो करूणालय ही हिन्दी की प्रथम नाट्य–काव्य है।''[137] जबकि मोहन अवस्थी सियारामशरण गुप्त जी के 'कृष्णा' को हिन्दी का प्रथम नाट्य–काव्य मानने के पक्ष में हैं।''[138] अधिकांश आलोचक हिन्दी में नाट्य–काव्य के पुरस्कर्ता होने का श्रेय प्रसाद जी को ही देते है करूणालय का प्रथम प्रकाशन इन्दु पत्रिका, में संवत् 1969 (सन् 1912) में हुआ था। बाद में यह चित्राधार काव्य के संग्रह में संकलित हुआ। जयशंकर प्रसाद जी ने सूचना के अन्तर्गत इसके रूप की ओर संकेत करते हुए लिखा है – ''यह दृश्य–काव्य गीति नाट्य के ढंग पर लिखा गया है।''[139] जबकि इसके मुख्य पृष्ठ पर इसे गीति नाट्य नाम दिया गया है। इसके छन्द के विषय में उन्होंने लिखा है – ''तुकान्त विहीन मात्रिक छंद में वाक्यानुसार विराम चिह्न दिया गया है।''[140] डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा के अनुसार – ''इसके पांच संक्षिप्त दृश्य है''। इसके प्रत्येक दृश्य में इक्कीस मात्राओं के एक ही छन्द का निर्वाह किया गया है। केवल पाँचवे दृश्य के अन्त में परिवर्तन के नाम पर एक 'पद' रख दिया गया है। स्पष्ट है कि इस नाट्य काव्य में 'गीति' जैसी कोई रचना नहीं है। यद्यपि कवि ने बीच–बीच में रंग संकेत देकर इसको अधिकाधिक अभिनेय बनाने की चेष्टा की है। तथापि इसमें कवित्व की ही प्रधानता है।''[141] कवि ने स्वयं इसे 'कविता' और काव्य नाम से अभिहित करते हुए कहा है – ''यद्यपि हिन्दी में इस ढंग की कविता का प्रचार नहीं है। तथापित अन्य भाषाओं में (जैसे संस्कृत में कुलक, अंग्रेजी में ब्लैक–वर्स, बंगला में अमिताक्षर छन्द आदि) इसका उपयुक्त प्रचार है। हिन्दी में भी इस कविता का प्रचार कैसा लाभदायक होगा, इसी विचार के लिए आज वह काव्य पाठकों के सामने उपस्थित किया गया है।''[142] स्वयं कवि ने इसे मूलतः काव्य ही माना है परन्तु नाटकीय शैली में लिखे जाने के कारण इसका नाम नाट्य–काव्य ही उपयुक्त है।

करूणालय में काव्यत्व और नाट्यत्व का समन्वय तो मिलता है परन्तु नाट्य–काव्य की प्रथम रचना होने के कारण वह पूर्णतः परिपक्वता नहीं प्राप्त कर सकी। इसका कथानक एक पौराणिक कथा को आधार लेकर निर्मित किया गया है। प्रसाद जी की अन्य ''कृतियो में जिस आनन्दवाद, जीवन के प्रति एक अडिग आस्था, आसुरी आचार के प्रति घृणा, प्रेम की शुभ्र ज्योति

---

[135] डॉ॰ नगेन्द्र, आधुनिक हिन्दी नाटक, पृ॰ 89
[136] डॉ॰ शकुन्तला दूबे, काव्य रूपों का मूल स्रोत और उनका विकास, पृ॰ 537
[137] डॉ॰ बच्चन सिंह, हिन्दी की गद्य प्रवृत्तियाँ, पृ॰ 42
[138] मोहन अवस्थी, आधुनिक हिन्दी काव्य शिल्प, पृ॰ 107
[139] जयशंकर प्रसाद, करूणालय, पृ॰ 8
[140] वहीं, पृ॰ 8
[141] डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा, नयी कविता के नाट्य काव्य, पृ॰ 100
[142] जयशंकर प्रसाद, करूणालय, पृ॰8

आदि के जो रमणीय चित्र मिलते हैं, उनका आदि उत्स इस रचना में देखा जा सकता है।''[143] करूणालय की कथावस्तु में एक वैदिक घटना का रूपान्तर प्रसाद जी ने यज्ञ प्रथा में बलि कर्म आदि अमानुषिक क्रियाओं की करूणाहीनता पर प्रहार करते हुए तत्कालीन और उसकी अमानवीयता का चित्रण सफलतापूर्वक किया है। ''बलिकर्म के लिए यज्ञ पूजा में बंधे हुए असहाय शुनः शेप के करूणा–याचना के रूप में, परमात्मा के प्रति जो मर्मोदगार प्रकट हुए हैं, वे कवित्व की दृष्टि से पर्याप्त प्रभावोत्पादक हैं।''[144] यह कृति राजा हरिश्चन्द्र की न्यायप्रियता पर वशिष्ठ की धर्मान्धता तथा निष्ठुरता पर कड़ा प्रहार करती है। अन्य गौण पात्रों की क्षुद्र मनोवृतियों को भी 'करूणालय' में चित्रित किया गया है। आधुनिक हिन्दी नाटक में डॉ॰ नगेन्द्र ने 'करूणालय' की समीक्षा करते हुए लिखा है – ''इस नाटक में नाट्य–काव्य के प्राण तत्व मानसिक संघर्ष का बड़ा दुर्बल प्रयोग है। हरिश्चन्द्र की कर्तव्य भावना और पुत्र प्रेम के बीच संघर्ष बड़ा शिथिल है। करीब–करीब नहीं के बराबर।''[145] प्रसाद जी की प्रारम्भिक रचना होने के कारण यह कृति अधिक प्रौढ़ एवं परिपक्व नहीं बन पाई।

'अनघ' मैथिलीशकरण गुप्त द्वारा कृत आदर्शात्मक नाट्य–काव्य है। इसमें गाँधीवादी विचारधारा में अनुप्रेरित राष्ट्रीय आंदोलन के सामाजिक पक्ष की झलक देखने को मिलती है। ''इसका रूप–शिल्प गीतिनाट्य का है पर आत्मा संवादात्म काव्य की।''[146] इसमें नाटकीयता एवं कवित्व का मधुर सामंजस्य घटित नहीं हो सका। डॉ॰ नगेन्द्र के शब्दों में – ''अनघ वास्तव में एक सैद्धान्तिक नाटक है उसमें युगधर्म के प्रतीक की सर्जना ही मुख्य है। अनध निश्चित ही गांधीवादी नीति का प्रर्वतक हैं।''[147] गोविन्द त्रिगुणायत ने ' अनघ' को इस प्रकार विश्लेषित किया है। ''गुप्त जी का 'अनघ' एक नाट्य–काव्य है इसमें पद्यों में ही कथा को नाटक का–सा रूप दिया गया है। कथा राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत है।''[148] गुप्त जी ने 'अनघ' नाट्य काव्य के संवाद में कहा है।'' प्रस्तुत नाटक में तीन संवादों का संग्रह है – जो क्रम से पौराणिक, ऐतिहासिक और काल्पनिक है।[149] ये पृथ्वीपुत्र में संकलित दिवोदास, जयिनी और पृथ्वीराज तीन नाट्य–काव्य हैं। इन तीनों रचनाओं में आदर्श की महानता है, किन्तु कार्य–व्यापार और संघर्ष का अभाव होने के कारण नाटकीयता और कवित्व का स्तर ऊँचा नहीं हो पाया है।

उदयशंकर भट्ट के विश्वामित्र, राधा, मत्स्यगंधा, एकला चलो रे, कालिदास, अशोक–बन–बन्दिनी, नहुषनिपात आदि काव्यत्व की दृष्टि से सफल नाट्य–काव्य हैं। नहुष

---

[143] प्र॰सम्पा॰ धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य (तृतीय खण्ड), पृ॰ 385
[144] जयशंकर प्रसाद, करूणालय, पृ॰ 31, 32
[145] डॉ॰ नगेन्द्र, आधुनिक हिन्दी नाटक, पृ॰ 97
[146] डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य (तृतीय खण्ड) पृ॰ 385
[147] डॉ॰ नगेन्द्र, आधुनिक हिन्दी नाटक, पृ॰ 98
[148] मैथिलीशरण गुप्त, पृथ्वीपुत्र (भूमिका) पृ॰ 5
[149] उदयशंकर भट्ट, नहुष निपात, पृ॰ 20–22

निपात में 'नहुष के आचार–विचार की विसंगतियों का मानो वैज्ञानिक आधार पर सुन्दर चित्रण है। नाटकीय परिस्थितियों की उदभावना के लिए भी कवि ने पौराणिक कथानक की सम्भावनाओं का पूरा उपयोग किया है। शची का सौन्दर्य निरूपण कवित्व की दृष्टि से उत्कृष्ट है।''[150] भगवतीचरण वर्मा कृत 'तारा' नाट्य काव्य में उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'चित्रलेखा' की भांति पाप पुण्य की समस्या का पुनरावलोकन है। सुमित्रानन्दन पंत ने अपने नाट्य–काव्यों की रचना रेडियो के लिए की है। उनके नाट्य काव्यों में तीन–संग्रह – 'शिल्पी, 'रजत–शिखर' और 'सौवर्ण' प्रकाशित हो चुके हैं। धर्मवीर भारती कृत अंधायुग (1954) एक युग प्रर्वतक नाट्य काव्य है। हिन्दी नाट्य काव्यों के विकास में इसकी रचना इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। इसके अतिरिक्त नरेश मेहता कृत 'संशय की एक रात', 'प्रवाद पर्व, दुष्यन्त कुमार कृत, 'एक कण्ठ विषपायी', डॉ॰ लक्ष्मीनारायण कृत 'सूखा सरोवर' रामधारी सिंह दिनकर कृत उर्वशी, मैथिलीशकरणगुप्त कृत 'लीला' भारत भूषण अग्रवाल कृत 'अग्निलीक' आदि नाट्य काव्यों ने नाट्य–काव्य की परम्परा को सफलतापूर्वक विकसित किया है।

निष्कर्षतः उपर्युक्त नाट्य काव्यों में रचनाकारों की दृष्टि भले ही अतीत के मिथकों की ओर गयी हो, परन्तु उन्होंने इनका उपयोग जहाँ एक ओर जीवन की आधुनिक संवेदनाओं को अभिव्यक्ति देने के लिए किया है, वहीं अतीत के संदर्भो की बौद्धिक एवं मनोवैज्ञानिक चिन्तन के आलोक में नयी व्याख्या की है। इस बिन्दु पर विवेचित नाट्य काव्य कृतियों का यह वैशिष्टय पाठकों को प्रभावित करता दीख पड़ता है। इनसे गुजरते हुए पाठक महाभारत, रामायण एवं उर्वशी जैसी किसी प्राचीन परम्परागत कथा प्रंसगों की यात्रा नहीं करता, बल्कि उनके भीतर बैठकर सम्बद्ध युग के माध्यम से वर्तमान समय और उसकी समस्याओं को भी देखता है।

1.7 नाट्य काव्य : साहित्यिक विधा :

नाट्य–काव्य में कवि का लक्ष्य काव्य की संवेद्य स्थितियों को नाटकीय विधान में रूपापित करना होता है। नाट्य–काव्य में काव्य मूल में रहता है, नाटक माध्यम होता है। नाट्य–काव्य में काव्यत्व और रूपकत्व का संगम होता है नाटक एवं काव्य के तत्त्वों का तालमेल ही नाट्य–काव्य है। इसके साथ–साथ काव्य में कथा का होना भी नाट्य–काव्य का एक अपेक्षित तत्त्व है। दूसरे शब्दों में इसे व्याख्यायित करना चाहें तो ''कथा काव्य में गुणों के साथ ही उसमें नाटकीय शैली (विधान) का संयोजन रहता है।''[151] ''कोई भी काव्य चेतना यदि अपने साथ नवीन को लाती है तो वह नवीन अपने लिए नूतन उपकरणों, परिधान अथवा शिल्प सज्जा का भी आग्रह करता है, बल्कि सत्य तो यह है कि वह उनसे मण्डित होकर ही अपनी अभिव्यक्ति करता है – उसकी वाहक काव्य चेतना न केवल नवीन भावों अथवा विचारों की

[150] उदयशंकर भट्ट, नहुष निपात, पृ॰ 20–22
[151] डॉ॰ हुकुमचन्द राजपाल, नयी कविता की नाट्य मुखी भूमिका, पृ॰ 24

वरन् नयी कला और शिल्प को भी साथ ही जन्म देती है।''[152] नाट्य काव्य विधा का आधार मुख्यतः मानव के अन्तर्मन में उठने वाले संघर्ष एवं द्वन्द्व है। अतः इसकी विषय सामग्री मानव हृदय के तीव्र आवेग हैं। इन आवेगों की अभिव्यक्ति काव्यत्व के माध्यम से होती है इस प्रकार जीवन के भावात्मक क्षणों एवं उससें संबधित घटनाओं पर इस विधा के कथानक का निर्माण होता है। यह कथानक वर्णनात्मक या घटना प्रधान न होकर भावों के निराले सौन्दर्य का परिचायक होता है। ''ऐसे भाव जो हृदय के भीतर सुगता से प्रवेश कर उसमें वही भाव उद्वेलित कर दें उन्हीं भावों को नाट्य–काव्य का रचयिता जीवन के बीच से खोज निकालता है और काव्य निर्माण करता है।[153] डॉ॰ हरिशचन्द्र वर्मा ने भी अपने शोध प्रबन्ध 'नयी कविता के नाट्य काव्य' में इस विधा को तर्कपूर्ण ढंग से साहित्यिक विधा स्वीकार करते हुए लिखा है – ''नाट्य–काव्य एक विशिष्ट विधा है।''[154]

जिस काव्य विधा में जितने अधिक तत्वों का जितने अधिक संश्लिष्ट रूप में उदात्त स्तर पर संयोजन होता है वह उतनी ही सशक्त होती है। नाट्य काव्य एक साथ ही पाठ्य भी है और अभिनेय भी, काव्य भी है और नाट्य भी तथा प्रबन्ध–काव्य होने के नाते वस्तुपरक भी है और एक विशिष्ट कवि की रचना होने के नाते व्यक्तिपरक भी है। वस्तुतः नाट्य काव्यों में नाटकीयता तथा काव्यात्मक, वस्तुपरक तथा व्यक्तिपरक, पाठ्य तथा रंगमचीयता सभी तत्त्वों का ऐसा जटिल संघात घटित होता है कि उनका पृथक–पृथक अस्तित्व ही नहीं रहता। ''कवि मानस की सभी क्षमताओं –कल्पना, भावना और बुद्धि का जैसा उत्कृष्ट संयोजन नाट्य काव्य में संभव है, वैसा अन्य किसी विधा में नहीं..... नाट्य काव्य में कवि आत्माभिव्यक्ति तो करता है, किन्तु प्रत्यक्ष रूप में नहीं, वरन् कथानक और पात्रों के माध्यम से प्रच्छन्न रूप में।''[155] हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में नाटक एवं काव्य दो पृथक विधाएँ स्वीकृत है परन्तु नाट्य काव्य एक नयी साहित्यिक विधा है। जिसकी चर्चा गत वर्षो से विद्वानों ने की है। इसका मूल कारण दो विधाओं का एक साथ संयोजन एवं सामंजस्य है। कई बार तो इनके तत्त्वों का इतना संश्लिष्ट समन्वय रहता है कि इनमें पृथकता का आभास भी नहीं होता। डॉ॰ विजय कुमार वेदालंकार का भी यही मत है कि – ''आधुनिक हिन्दी साहित्य में काव्य के साथ नाटकीय शैली का प्रश्रय ग्रहण करने वाली कृतियों को नाट्य–काव्य नाम देकर वर्मा जी ने नवीन साहित्यिक विधा का प्रवर्तन किया है।''[156] नाट्य काव्य विधा काव्य तत्त्वों को अपने अन्दर समेटे हुए है। नाटकीय विधानों से अलंकृत होकर मानव मन के सूक्ष्म भावों एवं व्यापारों की बाह्य जगत तक वाहक बनी है। इस

---

[152] डॉ॰ शिव कुमार मिश्रा, नया हिन्दी काव्य, पृ॰ 331
[153] डॉ॰ शकुन्तला दुबे, काव्य रूपों के मूल स्रोत एवं उनका विकास, पृ॰ 538
[154] डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा, नयी कविता के नाट्य काव्य, पृ॰ 97
[155] जयशंकर प्रसाद, अंधायुग, एक विवेचन, पृ॰ 20–21
[156] सम्पा॰ बलजीत सिंह मलिक, साहित्य मनीषी डॉ॰ हरिश्चनद्र वर्मा, डॉ॰ विजयकुमार वेदालंकार पृ॰ 165

कार्य में उसे जिन तत्त्वों का सहारा लेना पड़ता है उसकी चर्चा यहाँ अनिवार्य हो उठती है। ''किसी भी नाट्यात्मक काव्य की आधारभूमि बिना संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व के सम्भव नहीं। नाटकीयता और अन्तर्द्वन्द्व के थपेड़े नाट्यात्मक काव्य की अनिवार्य और महत्वपूर्ण विशेषता है।''[157] यह अन्तर्द्वन्द्व पात्र परिकल्पना के माध्यम से अभिव्यक्त किया जा सकता है। हिन्दी साहित्य कोश में नाट्यकाव्य का अर्थ कविता का रूप माना गया है जिसकी संरचना (रूप विधान) नाटकीय होता है।''[158]

वस्तुतः यदि नाट्य काव्य का विभाजन करना पड़े तो उसे मुख्यतः दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है। पहला स्पष्ट नाट्य काव्य एवं दूसरा संश्लिष्ट नाट्य–काव्य।'' इनके उपभेदों में क्रमशः महानाट्यकाव्य, खण्ड नाट्य काव्य एवं एकार्थ या संश्लिष्ट नाट्य काव्य पर विचार किया जा सकता है।''[159]

महानाट्य काव्य के बारे में विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि हिन्दी के सभी प्रतिष्ठित महाकाव्य वांछित संशोधन के उपरान्त महानाट्य काव्यों की कोटि में रखे जा सकते हैं। महा नाट्य काव्य को परिभाषित करते हुए 'हिन्दी साहित्य कोश' में लिखा है कि ''नाट्य महाकाव्य वह पद्यबद्ध काव्य है जिसमें नाटक की कथोपकथन पद्धति और नाटकीय संधियों से युक्त अन्विति तो होती है पर जो अभिनय नहीं होता क्योंकि इसका कथानक नाटक की अपेक्षा अधिक लम्बा वैविध्यपूर्ण और अवान्तर कथाओं तथा अभिनय दृश्यों से युक्त होता है, और जिसमें नाटक की अपेक्षा अधिक गुरूत्व और गांभीर्य होता है।''[160] डॉ॰ कमलेश ने 'उर्वशी के शिल्प की चर्चा करते हुए इसे गीति–नाट्य के रूप में लिखित महाकाव्य माना है।''[161] हमने उर्वशी को नाट्य काव्य की श्रेणी में रखा है इस प्रकार उर्वशी जैसे नाट्य काव्य महा–नाट्य काव्य की कोटि में समाविष्ट किए जा सकते हैं।

खण्ड नाट्य काव्य एवं संश्लिष्ट नाट्य काव्यों में बहुत सूक्ष्म अन्तर नहीं होता है क्योंकि एक ही रचना में तीनों का थोड़ा–थोड़ा रूप विद्यमान रहता है। पात्रों का चरित्रोद्घाटन एवं रचना फलक का विस्तार ही दोनों में अन्तर को रूपायित करता है नयी कविता के नाट्य काव्य अधिकांशतः एक ही कोटि में स्वीकार किये गए हैं महाखण्ड एवं संश्लिष्ट नाट्य काव्यों को हम क्रमशः बृहद्, लघु एवं संश्लिष्ट नाट्य काव्य भी कह सकते हैं।

उपुर्यक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि हिन्दी में ऐसी रचनाएँ नाट्य काव्य हैं जो मूलतः काव्य हैं तथा संवेदना की तीव्रता की अभिव्यक्ति के लिए उनमें नाटकीय आधार अपनया गया है। काव्य की नाटकीय शैली में अभिव्यक्ति अथवा नाट्य शैली में

---

[157] डॉ॰ सुरेश गौतम, वीणा गौतम, त्रिकोण में उभरती आधुनिक संवेदना, पृ॰ 184
[158] सम्पा॰ धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, पृ॰ 385
[159] डॉ॰ हुकुमचन्द राजपाल, नयी कविता की नाट्य मुखी भूमिका, पृ॰ 22
[160] सम्पा॰ डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, भाग–1 पृ॰ 327
[161] डॉ॰ यश गुलाटी, हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों का मूल्याँकन से उद्घृत पृ॰ 797

अभिव्यंजना को नाट्य–काव्य नाम से विभूषित किया गया हैं जिसे आलोचको एवं विद्वानों ने भी हिन्दी की एक विशिष्ट साहित्यिक विधा के रूप में स्वीकार किया है। जिसमें क्षमता, कल्पना, भावना और बुद्धि का उत्कृष्ट संयोजन एक साथ प्रस्तुत किया जाता है। इसमें संश्लिष्ट तत्वों का संयोजन रहता है तथा यह एक साथ ही पाठ्य, अभिनेय, वस्तुपरक एवं व्यक्तिपरक भी है।

1.8 नाट्य काव्य के तत्त्व :

नाट्य काव्य विधा तत्त्वों को अपने अन्दर समेटे हुए नाटकीय विधानों से अलंकृत होकर मानव मन के सूक्ष्म भावों एवं व्यापारों की बाह्य जगत तक वाहक बनी है। इस काव्य में जिन तत्त्वों का आश्रय लेना पड़ता है। नाट्य–काव्य में काव्य एवं नाटक का गहन सामंजस्य है। इस सामंजस्य में कुछ सीमाएं नाटकीयता को छोड़नी पड़ती है। कुछ कवित्व को इसमें जहाँ नाटकीय तत्त्वों की विवेचना की जाती है, वहीं काव्य तत्त्वों का भी वर्णन होता है। इस आधार पर नाट्य काव्य के निम्न तत्त्व निर्धारित किये गए हैं – 1. कथानक 2. पात्र और चरित्र–चित्रण 3. संवाद 4. मिथक के आयाम 5. अभिव्यंजना 6. उद्देश्य। ये सभी तत्त्व परस्पर मिलकर किसी भी रचना की सार्थकता सिद्ध करते हैं। व्यवहारिक उपयोगिता की दृष्टि से इनका पृथक–पृथक वैज्ञानिक विश्लेषण अनिवार्य है।

1.8.1 कथानक

हिन्दी शब्द 'कथानक' एवं 'कथावस्तु' के लिए अंग्रेजी में प्लॉट शब्द का प्रयोग होता है।''[162] साहित्य के क्षेत्र में कथानक से अभिप्राय प्रबन्ध रचना की कथा, कहानी अथवा उसमें वर्णित घटनाओं के संयोजन से लिया जाता है। युनानी विद्वान अरस्तु ने कथानक को 'त्रासदी' की आत्मा स्वीकार करते हुए इसका अभिप्राय ''कथा की घटनाओं की कलात्मक संघटना माना है।''[163] '

शिप्ले के अनुसार, ''सरल या उलझनपूर्ण घटनाओं के संगुम्फन में वह ढंग, जिस आधार पर रूपक या नाटक का निर्माण किया जाता है, प्लॉट या कथानक के नाम से अभिहित होता है।''[164] डॉ॰ नगेन्द्र ने भी 'कामायनी' के कथानक पर विचार करते हुए समय 'संघटनाओं के समन्वय'[165] को ही कथानक कहा है। डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा ने 'नयी कविता के नाट्य–काव्यों'' में कथानक को इस प्रकार परिभाषित किया है – ''विशिष्ट देश और काल में, विशिष्ट व्यक्तियों के सन्दर्भ में घटित तथा कारण कार्य, क्रम में नियोजित घटनाओं की श्रृंखला को कथानक कहते

---

[162] डॉ॰ सिद्धनाथ कुमार, हिन्दी एकांकी की शिल्प–विधि का विकास, पृ॰ 59
[163] डॉ॰ बच्चन सिंह, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन, पृ॰290
[164] डॉ॰ बच्चन सिंह, कथावस्तु, वस्तु (कथात्मक साहित्य) प्र॰ सम्पा॰ डॉ॰ धीरेनद्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश भाग–1, पृ॰ 205
[165] डॉ॰ नगेन्द्र, कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ, पृ॰ 12

हैं।''[166] उपर्युक्त परिभाषाओं के आलोक में कथानक की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि विशिष्ट देशकाल में, मानव जीवन में घटित कारण–कार्यक्रम में संयोजित घटनाओं एवं कथा की घटनाओं के संगुंफन की श्रृंखला को कथावस्तु कहा जा सकता है।

कथानक के संबध में संकलन–त्रय की अवधारणा पर भी विचार कर लेना युक्ति संगत होता है। ''संकलन–त्रय का अभिप्राय है – कार्य, समय और स्थान का संकलन दूसरे शब्दों में इसे अन्विति भी कहा जाता है।''[167] नाट्य काव्य के कथानक को मार्मिक एवं चिताकर्षक बनाने के लिए रचनाकार ऐसे प्रसंगों को चुनता है, जो हृदय के मर्मस्थल को स्पर्श कर सकें। नाट्य काव्य में पौराणिक एवं अतीत की गौरव गाथाओं को विषय बनाया जाता है। नाट्य काव्य का कथानक स्थूल परिस्थितियों के संयोजन तक सीमति नहीं रहता उसे नाटकीय क्रिया व्यापार की सम्भावनाओं को सुरक्षित रखते हुए काव्यात्मक संवेदना के स्तर तक उठना होता है। पौराणिक कथानक किसी देश के जातीय जीवन के इतिहास, संस्कृति धर्म और दर्शन से संबंध होते हुए भी किसी विशिष्ट युग और उनके सन्दर्भ तक सीमित नहीं होते बल्कि उनके विशिष्ट रूप में भी उनका सामान्य रूप निहित रहता है। पंत जी के शब्दों में – ''पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, काल्पनिक, घटनात्मक आदि सभी विषयों पर नाट्य–काव्य लिखे जा सकते हैं। सामाजिक और व्यक्तिगत समस्याएँ भी नाट्य–काव्य का विषय बन सकती हैं किन्तु समस्यामूलक रचनाओं में सावधान रहना पड़ता है। जैसे–सर्वप्रथम नाट्य–काव्य में उठाई गयी समस्या वास्तविक हो, उसका संबध व्यैक्तिक के अन्तर्द्वन्द्व या समाज से हो, दूसरे जिन विरोधी तत्त्वों के माध्यम से समस्या उठाई गई है उनका व्यक्तित्त्व सजीव मानवीय हो। विचार धाराएं सन्तुलित, गूढ़ और तर्क ग्रसित न हो।''[168] इस प्रकार कथानक को केवल सम–सामयिक जीवन की स्थूल, सतही यर्थाथता तक सीमित न रहकर युग–युगीन जीवन–सत्यं को उद्घाटित करने वाली गहराई को अपने में समाहित करना होता है। नाट्य काव्य के कथानक में गहन अनुभूतियों को जागृत करने की क्षमता वाली घटनाओं को समविष्ट किया जा सकता है। इसलिए नाट्य काव्य के कथानक विविध विस्तारों से विमुक्त गहन अभिव्यंजना के निमित्त प्रतीकात्मक आख्यानों का रूप ग्रहण करते हैं। उदाहरणार्थ, ऋग्वेद में आया हुआ यह पुराख्यान द्रष्टव्य है, जिसमें इन्द्र पणियों में युद्ध करके गायों को मुक्त करते हैं। ऋग्वेद में कुछ स्थलों पर पणि लोग निश्चित रूप से ऐसे पौराणिक व्यक्तियों या दैत्यों के रूप में आते हें, जो आकाश की गायों अथवा जल को रोक लेते हैं।[169] 'सरमा' नाम की कुतिया इन्द्र को वहां तक ले जाती है, जहाँ से उस चट्टान को आसानी से तोड़ा जा सकता है, जिसके पीछे गायें या जल धाराएं बन्दी हैं। इस युद्ध में

---

[166] डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा, नयी कविता के नाट्य–काव्य, पृ॰ 61
[167] डॉ॰ बच्चन सिंह, भारतीय एवं कावय शास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन पृ॰ 295
[168] सुमित्रानन्दन पंत, शिल्प और दर्शन, पृ॰ 296–97
[169] दे॰ ऋग्वेद, 6, 44, 22

अंगीरस इन्द्र का साथ देते हैं। विद्वानों ने रस प्रसंग के अनेक अर्थ लगाए हैं। कुछ विद्वानों ने इसमें प्रागैतिहासिक काल का एक जाति से दूसरी जाति के युद्ध का अभिप्राय प्रतीत होता है तो कुछ इसे पशु अपहरण का एक सामान्य वर्णन मानते हैं। अरविन्द घोष ने इसकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए, इन्द्र को शुद्ध अस्तित्व या दिव्य चेतना के रूप में, अंगिरस को मानवीय चेतना की शक्तियों के रूप में, पणि को अज्ञान और पाप के प्रतीक के रूप में, सरना को अन्तर्ज्ञान (इन्ट्यूशन) के रूप में और चट्टान को मनुष्य के भौतिक अस्तित्व के रूप में ग्रहण किया है।''[170]

नाट्य काव्य में कवि पुराख्यानों में निहित अर्थो की संभावनाओं को मंचन करके, उन्हें सहज काव्यात्मक रूप प्रदान करता है। नाट्य–काव्य में अनुकूल और प्रतिकूल घटनाओं में टकराव चलता रहता है और इसी टकराव से वस्तु का विकास होता है। कथानक का सौन्दर्य चुनी हुई मार्मिक घटनाओं के द्वन्द्व–मूलक विकास में ही निहित रहता है। कथानक में संघर्ष सामूहिक एवं व्यक्तिगत स्तर दोनों पर रहता है। नाट्य काव्य में जीवन के गहन अर्थो की अभिव्यंजना जातीय जीवन के मूल में चिर प्रतिष्ठित कथानकों के माध्यम से ही होती है। क्योंकि अपने मूल से विच्छिन्न होकर अपने प्रतीकात्मक स्वरूप एवं विभिन्न युगों में अपनी सार्थकता को खो देते हैं। ''कवि जिस प्रकार प्रकृति के विभिन्न रूपों और व्यापारों से मानव जीवन की गतिविधियों और मनोदशाओं के गहन सादृश्य के आधार पर अपनी कविता में अनेक प्रतीकों की योजना करता है। उसी प्रकार वह अनेक ऐतिहासिक तथा पौराणिक प्रसंगों का प्रतीकात्मक रूप में प्रयोग करता है। जब कोई कवि किसी पुराख्यान (मिथक) का अपने काव्य में प्रयोग करता है तो वह केवल अपनी ही व्यक्तिगत संवेदना को मूर्त नहीं करता, वरन् वह मानव समूह की संवेदना को भी व्यक्त करता हैं जिसके अवचेतन के संस्कारों में वह पुराख्यान पैतृक दया के रूप में युग–युग से प्रतिष्ठित हो।''[171]

निष्कर्षतः कथानक नाट्य–काव्य का सर्वप्रमुख एवं अनिवार्य तत्त्व हैं यद्यपि काव्य का मुख्य साध्य रस–सृष्टि करना है, तथापि नाट्य काव्य में बिना व्यवस्थित कथानक के इस उद्देश्य की पूर्ति सम्भव नहीं। विश्रृंखलित एवं अव्यवस्थित कथानक प्रभावान्विति में भी अक्षम होता है। नाट्य–काव्य में अमूर्त उद्देश्य कथानक और उससे संबधित क्रिया व्यापार के माध्यम से मूर्त रूप में साकार होता है। इस प्रकार रचनाकार कथानक के द्वारा निराकार उद्देश्य को दर्शकों के समक्ष गोचर एवं ग्राह्य रूप में प्रस्तुत करता है। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि नाट्य–काव्य में कथानक ही वह मूल तत्त्व है, जिसमें अन्य सभी तत्त्व भी समाहित रहते हैं।

1.8.2 पात्र एवं चरित्राँकन

[170] डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा, नयी कविता के नाट्य–काव्य, पृ॰ 69 से उद्घृत
[171] डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा, नयी कविता के नाट्य काव्य, पृ॰ 62

पात्र एवं चरित्राँकन नाट्य–काव्य का अनिवार्य तत्त्व हैं। चरित्र निर्माण काव्य को प्राणवान बनाता है। आचार्य शुक्ल ने भी चरित्र चित्रण को नाट्य काव्य का श्रेष्ठ तत्त्व स्वीकार किया है। उनके अनुसार – ''रस संचार से आगे बढ़ने पर हम काव्य की उस भूमि पर पहुँचते है जहाँ मनोविकार अपने क्षणि रूप में ही न दिखाई देकर जीवन व्यापी रूप में दिखाई पड़ते हैं। इसी स्थायित्व की प्रतिष्ठा द्वारा शील निरूपण और पात्रों का चरित्र चित्रण होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस भूमि में आने पर फुटकारिये कवि पीछे छूट जाते हैं, केवल प्रबन्ध कुंशल कवि ही दिखलाई पड़ते हैं।''[172] पात्र कथानक रूपी मशीन के पुर्जे मात्र नहीं है और न ही कथानक पात्रों के इर्द–गिर्द बुना हुआ ऊपरी ताना बाना है। अपितु दोनों एक–दूसरे से परस्पर सम्पृक्त हैं। कथानक की गतिशीलता पात्रों की स्वभावगत विशेषताएँ ही निर्धारित करती हैं। पात्रों के जीवन अथवा चरित्र के विकास की परिणति है। कोई भी कथात्मक कृति तभी सफल होती है जब कथानक और पात्र जीवन सापेक्ष हो। ''यदि जीवन में उन्मुक्त घटन को सर्वथा अस्वीकार करके किसी स्थिति का तर्क सम्मत ढंग से उपयोग किया जाता है तो पात्रों के यथार्थ होते हुए भी परिणाम यान्त्रिक होगा।''[173] वस्तुतः जीवन की सहजता को स्वीकार करने पर ही पात्र और स्थिति दोनों यथार्थता को ग्रहण कर पाते हैं क्योंकि पात्र परिस्थिति के माध्यम से ही अपने जीवन को व्यक्त करते हैं।

मिथकीय परिकल्पनाओं को एक नया आयाम देने वाले नाट्य काव्य मानव जीवन के अन्तर्बाह्य दोनों पक्षों की जीवन्तता को पात्रों के माध्यम से ही सफल अभिव्यक्ति दे सके हैं। अधिकांश पात्र एवं घटनाएँ पौराणिकता के आस–पास घूमती हैं। अतः कृति की पात्रगत विशिष्टता एक अनिवार्य तत्त्व हो उठती है। पात्र परिकल्पना में पात्र सभी पात्रों में मानव की अन्तश्चेतना तथा उसके मनः व्यापारों, मनोभावों, अतृप्त इच्छाओं एवं मानसिक घात–प्रतिघातों का गतिमय एवं द्वन्द्वात्मक चित्रण होता है। पात्रों की वृत्ति अन्तर्मुखी होती है। अतः उनमें मानसिक, जटिलता, अनैक्य, आतंरिक भेद–भाव, असंतोष, तृष्णा, नैराश्यपूर्ण आकांक्षाएं, मनोविकृतियाँ, प्रतिशोध ग्रन्थि रागात्मक एवं अहंवाद के दर्शन होते हैं। अन्तर्विरोध की जटिलता के कारण पात्रों के स्वरूप में प्रतीकात्मकता स्वयं ही प्रवेश पा जाती है। नाट्य काव्यकार मनोशास्त्रीय दृष्टि की कसौटी पर पात्रों की संरचना कुछ इस ढंग से करता है। जो मानव की मूलभूत विभिन्नताओं को सशक्त वाणी देते हैं पात्रों के चरित्रांकन में कृतिकार कल्पना की 'उर्वर' शक्ति का आश्रय भी लेता है। नाट्य–काव्य के पात्र दैनिक जीवन में मिलने वाले पात्रों से भिन्न होते हैं। नाट्य काव्य के रचयिता को ऐसे पात्रों की सृष्टि करनी होती है, जिनमें नाटकीय क्रिया व्यापार भी हो और काव्यात्मक भावात्मकता भी। नाट्य–काव्य के पात्र सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक चिन्तन प्रधान एवं संवेदनशील होते हैं। नाट्य–काव्य का लक्ष्य

---

[172] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, पृ॰ 123
[173] डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा, नयी कविता के नाट्य काव्य पृ॰ – 64,65

मानव के अन्तर्जीवन का चित्रण होने के कारण उसमें पात्रों की मनः स्थितियों का गहराई से मन्थन किया जाता है। प्रसिद्ध जर्मन कवि गेटे ने नाट्य कविता के पात्रों के विषय में कहा है – ''सबसे अच्छा प्रभाव तब पड़ता है जब पात्र सांस्कृतिक उन्नयन के एक विशिष्ट – धरातल पर प्रतिष्ठित हो, जिससे कि उनके कार्य नैतिक, राजनीतिक या यान्त्रिक विचारणाओं से अभिभूत हुए बिना, उसके व्यक्तित्व की निर्मान्त अभिव्यंजना करें। इन्हीं कारणों से वीर–युग की पुराण कथाएँ कवियों के लिए विशेष उपयोगी हुआ करती थी।''[174]

पात्र एवं चरित्रांकन में ही नाट्य–काव्य की सफलता एवं असफलता निहित होती है। क्योंकि वही नाटक को मंचित करने वाला अनुकर्ता होता है। वस्तुतः नाटक एक अनुकृति विधा है – ''अनुकृतिर्नाट्यम'' नाटककार के द्वारा उपस्थित –उपस्थापित नाटकगत चरित्र को अपने ऊपर आरोपित कर मंच पर उपस्थित होता है।''[175] वह एक कुशल पात्र का स्वरूप ग्रहण करता है। नाट्यकार की अभिव्यक्ति का माध्यम वस्तु एवं पात्र ही होते हैं। अतः इन दोनों का सशक्त होना कृति के लिए अत्यन्त आवश्यक हो जाता है इसके अतिरिक्त पात्रों के मानसिक संघर्षो के कई स्तरों का उद्घाटन करते समय इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि काव्यत्व और क्रिया व्यापार से पात्रों के मानसिक संघर्षो का सम्बन्ध न टूटने पाए।''[176] पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व उनकी चारित्रिक विशिष्टताओं को उद्घाटित करने का सशक्त माध्यम है डॉ॰ रामकुमार वर्मा ने इस पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, ''नाट्यकाव्य के चरित्रों का सौन्दर्य अन्तर्द्वन्द्व से ही निखरता है। वही प्रधान साधन है। जिसके द्वारा पात्रों के चरित्र की सूक्ष्मता स्पष्ट होती है।''[177] स्पष्ट है कि पात्र एवं चरित्र चित्रण नाट्य काव्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्त्व है। गूढ अर्थ–गार्भित तथा आन्तरिक संघर्ष से युक्त कथानक की भांति नाट्य–काव्य के पात्र अन्तर्द्वन्द्व प्रधान एवं गूढ़ होते हैं। उनका विकास विस्तार की दिशा में न होकर आन्तरिक गहराई में होता है। इन पात्रों को जितनी गम्भीरता से परखने और समझने की चेष्टा की जाती है। उतने ही गहन अर्थो की परतें उनके भीतर से खुलती जाती हैं। डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा के मतानुसार – ''नाट्य काव्य के पात्र बहुधा स्वभागवत या भावरूप होते हैं। वस्तुन्मुखी नहीं। ये पात्र जीवन की अतल गहराइयों में निहित उन गहन शक्तियों, आन्तरिक प्रवृतियों और मनोद्वन्द्वों के प्रकाशक होते हैं। जो उनके निजी जीवन को परिचालित करने वाले होने के साथ–साथ समष्टिगत जीवन की मूलभूत प्रेरणादायी शक्तियाँ हैं।''[178] इस प्रकार नाट्य काव्य में अनेक जटिल पात्र होते हैं जिनके व्यक्तित्व में अनेक प्रकार की विशिष्टताओं का सामंजस्य होता है जो देखने में भावुक एवं सरल लगते हैं परन्तु यथार्थक में नितान्त बौद्धिक एवं चतुर होते हैं। इसके साथ ही नाट्य काव्य के

---

[174] दे॰, प्र॰ सम्पा॰ डॉ॰ नगेन्द्र, पाश्चात्य काव्य शास्त्र की परम्परा, पृ॰ 120
[175] डॉ॰ निशान्त केतु, नाटक और मंच,पृ॰ 45
[176] डॉ॰ बच्चन सिंह, हिन्दी नाटक, पृ॰ 161
[177] डॉ॰ रामकुमा वर्मा, शिवाजी, (भूमिका) पृ॰ 15
[178] डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा, नयी कविता के नाट्य काव्य, पृ॰ 65

रचयिता के लिए भी अनिवार्य है कि वह अपनी वाणी को मूर्त रूप पात्रों के माध्यम से ही प्रदान करे। स्वयं को प्रत्यक्ष करने पर पात्रों का औदात्य कम हो जाता है।

1.8.3 कथोपकन

नाट्य काव्य की भावात्मक कथावस्तु पात्रों के परस्पर कथोपकथन द्वारा गतिशीलता प्राप्त करती है। भावात्मकता का समावेश होने के कारण कथोपथनों में सजीवता और मार्मिकता मूर्त रूप ग्रहण करने लगती हे। साथ ही उसमें (गतियुक्त) गतिमता का प्रभाव भी दृष्टिगोचर करने लगती है। रचनाओं का प्रमुख आधार अन्तर्जीवन होने के कारण व्यक्ति की रागात्मक भावनाओं, इच्छाओं एवं मानसिक विचारों का प्रभुत्व रहता है। इनमें कवि अपनी आन्तरिक प्रवृत्तियों के माध्यम से पात्रों की अन्तर्वृत्तियों वैचारिक संघर्ष को काव्यत्व के योग से अभिव्यक्ति देता है। नाट्य–काव्य में समाविष्ट मार्मिक प्रसंगों और उनसे सम्बद्ध संवेदनशील पात्रों की सजीव अभिव्यक्ति के लिए संवादों का जहाँ काव्यमय होना अनिवार्य हैं वहीं बोल चाल की भाषा से सम्पर्क बनाए रखना भी आवश्यक है। टी.एस. इलियट ने ''नाट्य–काव्य के लिए ऐसी ही बोलचाल की भाषा की आवश्यकता पर बल दिया है, जो नाटकीय होने के साथ ही काव्यात्मक स्तर को प्राप्त हो सके।''[179] जेम्स रीब्स के अनुसार – ''बोलचाल के निचले स्तर के अत्यधिक निकट की भाषा गँवारू और अश्लील हो जाती है तथा अत्यधिक ऊँची उड़ान भरने वाली साहित्यिक भाषा वांछित न होते हुए भी हास्यास्पद हो जतीी है।''[180] अतः नाट्य–काव्य में भाषा का सहज काव्यात्मक माध्यमिक रूप ही श्लाघनीय है। भावपूर्ण स्थितियों की भाषा संगीतमयी हो जाती है। किन्तु केवल संगीत में पात्रों और परिस्थितियों के निर्वाह की क्षमता नहीं होती। इस प्रकार नाट्य काव्यकार को संगीत और बोलचाल की भाषा के बीच का माध्यम चुनना होता है। नाट्य–काव्य के संवाद छन्दबद्ध भी हो सकते हैं, मुक्तक छन्द में भी और कहीं–कहीं आवश्यकता के अनुरूप वृतगंधी गद्य के स्तर पर भी पहुंच सकते हैं। किन्तु उनमें किसी न किसी स्तर पर काव्यात्मकता सर्वत्र रहती है। वस्तुतः नाट्य–काव्य के लिए मुक्त छन्द सर्वथा उपयुक्त रहता है क्योंकि मुक्त छंद में भावानुसार विविध प्रकार की लयों की योजना की स्वतन्त्रता रहती है। भावों के उतार–चढ़ाव एवं क्रिया व्यापार की गति को मुक्त छन्द की लयात्मक विभिन्नता पूरी तरह पकड़ने में समर्थ होती है। मनोभावों की तीव्रता अतिरंजित अथवा काव्यमयी भाषा में व्यक्त होती है। जिसमें लय, प्रतीकात्मक बिम्बों, अलंकारों आदि भाव एवं भाषा के अन्तर्वर्ती तत्त्वों की अन्विति अनायास घटित होती है। नाट्य–काव्य के कथोपकथन पात्रों और परिस्थतियों के मर्म का उद्‌घाटन करने वाले होने के साथ ही सजीव, बिम्बात्मक एवं भावपूर्ण होते हैं।

---

[179] T.S. Eliot, On Poetry and Poets, P - 88
[180] James Reever, Understanding Poetry, P - 165

कथोपकथन नाट्य–काव्य विधा के सर्वप्रमुख उपजीव्य हैं – ''कथानक को विश्रृंखल अथवा सुश्रृंखल, गतिशील एवं अगतिशील बनाने का बहुत कुछ श्रेय कथोपकथन द्वारा ही उद्‌घाटित करना संभव है।''[181] कथोपकथन द्वारा ही पात्रों के मनोभावों एवं क्रियाओं की अपेक्षा नाट्य–काव्य विधा के कथोपकथनों में एक वैशिष्टय होता है। अतः कहीं–2 अस्वाभवाकिता कथोपकथनों की सहज प्राप्ति भी होती है। अस्वाभाविकता को स्वाभाविकता का पुट देने के लिए संवादों में संवेगात्मकता अत्यन्त अनिवार्य हो जाती है। ''जब तक पात्र रूक्ष बौद्धिक स्तर से लक्ष्य की भाषा का व्यावहार नहीं करते तब तक संवादों में मर्मस्पर्शिता नहीं आ पाती।''[182] हृदय की आवेग मयी स्थितियों का चित्रण जहाँ भी होगा, वहाँ पर कथोपकथनों की भाषा काव्यात्मकता या लयात्मकता की माँग करती है। क्योंकि काव्यात्मकता एवं लयात्मकता आवेगों की अभिव्यक्ति का सर्वोत्कृष्ट माध्यम है। टी.एस. इलियट का कथन यहाँ सत्य प्रतीत होता है। ''भावावेश के क्षणों में कविता की वाणी ही मानव हृदय की अभिव्यक्ति का स्वाभाविक साधन है।''[183] मानव स्वभाव से ही भावावेग के क्षणों की अभिव्यक्ति कोमल एवं सहज रूप में चाहता है। यह कोमलता काव्य में ही प्राप्त होती है। अतः कविता ऐसे क्षणों के लिए अनिवार्य भाषा का रूप धारण कर लेती है। और पात्र स्वाभाविक रूप से कविता की वाणी में अपनी भावात्मक अभिव्यक्ति सफलतम रूप से कर पाता है।

नाट्य–काव्य के कथोपकथनों में स्वाभाविकता होना अनिवार्य है। स्वाभाविकता से तात्पर्य है। – कथन में बनावटीपन एवं अस्वाभाविकता का न होना। ''वस्तु जहाँ संवाद स्वतः प्रभावित करने में समर्थ हो, वहीं सहजता विद्यमान होती है। अतः नाट्य–काव्य विधा के कथोपकथनों की रचना करते समय कविता की लय एवं शैली की ओर पर्याप्त ध्यान देना पड़ता है, जिससे उसकी स्वाभाविकता पर कहीं भी आघात न बनें। उसमें कहीं भी कृत्रिमता का संचार न होने पाए। शेक्सपियर के नाटक इसके श्रेष्ठ उदाहरण है।''[184] उनके नाटकों में चरित्रगत विशेषताओं एवं मनः स्थितियों के अनुसार कविता की लय में परिवर्तन होता चलता है। तीव्र भावावेश के समय पात्रों की वाणी में विषमता शेक्सपीयर के नाटकों में दर्शनीय है। हिन्दी के प्रसिद्ध नाट्य–काव्यकार धर्मवीर भारत की कृतियों में भी यह छटा दर्शनीय हैं। ''नाट्यकाव्यकार अपनी कृति में सर्वत्र व्याप्त होने पर भी सर्वत्र अप्रत्यक्ष रहता है। यह अप्रत्यक्षता की स्थिति संवादात्मक शैली के प्रश्रय से ही सम्भव है। नाट्य–काव्य केवल कथोपकथनात्मक काव्य नहीं है, उनमें कथोपकथन के माध्यम से कथानक तथा पात्रों के संयोजन में से ही कवित्व का संचार

---

[181] डॉ॰ बच्चन सिंह, हिन्दी नाटक, पृ॰ 161
[182] वही, पृ॰ 72
[183] T.S. Eliot, Selected Proose, P 70
[184] डॉ प्रमिला सिंह, स्वातन्त्र्योत्तर गीति नाट्य–काव्य, पृ॰ 38

होता है।''[185] नाट्य–काव्य का सम्पूर्ण विधान काव्यमय होने के कारण कथानक एवं पात्रों को काव्यमय शैली में ही निबद्ध किया जाता है। काव्यमय उदगारों की अभिव्यक्ति के लिए गद्य अनुपयुक्त है। उदय शंकर भट्ट के शब्दों में – ''पद्य में ही आन्तरिक भावों की अनुभूति अधिक संभव है। इस अनुभूति के लिए तदनुकूल मनः स्थिति होनी आवश्यक है। कविता में भावों को तरंगित करने की शक्ति गद्य की अपेक्षा अधिक होती है। अतः भावपूर्ण नाट्य लिखने के लिए गद्य की अपेक्षा पद्य अधिक उपयुक्त रहता है।''[186] संवादों में स्वाभाविकता बनाए रखने के लिए नाट्य–काव्यकार को उन स्थितियों एवं दृश्यों में कुछ अधिक सत्तर्कता रखनी चाहिए जिनकी अभिव्यक्ति पक्ष में न की जा सके, क्योंकि ऐसी स्थिति में पद्यमय भाषा कृत्रिमता धारण कर लेती है। गद्य जैसा लचीलापन न आ पाने के कारण कविता के लिए कभी–कभी प्रत्येक स्थिति को स्वाभाविक रूप दे पाना कठिन हो जाता है।

नाट्य काव्य के रचयिता को कथोपकथनों की सृष्टि करते समय कुछ अनिवार्य बातों पर विचार अवश्य करना चाहिए।

- वह पात्रों के मुख से ऐसे संवाद कहलावए जो पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं के अनुरूप हों।
- संवाद अधिक लम्बे–लम्बे नहीं होने चाहिए। अधिक लम्बे संवाद क्रिया व्यापार की गति में बाधक हो सकते हैं।
- भावना–प्रधान एवं आवेग सम्पन्न कथोपकथनों में स्वाभाविकता लाने के लिए पात्रों की योग्यता एवं प्रकृति के अनुसार पद्यमय कथोपकथनों की रचना होनी चाहिए।
- इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि पात्रों का चरित्रगत स्पष्टीकरण स्वयं उनके ही वार्तालाप द्वारा होना ज्यादा उचित होता हैं।

डॉ॰ कृष्ण सिंह सिंहल के अनुसार – ''नाट्य काव्य के कथोपकथन सहज, स्वाभाविक, भावात्मक एवं चरित्र–चित्रण में गहनता एवं बारीकी लिए होने चाहिए। उनमें यह सामर्थ्य होनी चाहिए कि श्रोताओं तथा दर्शकों के मन में उन भावनाओं का उद्रेक कर सके जो पात्रों के मन में उन परिस्थितियों में सम्भव है।''[187]

निष्कर्षतः नाट्य काव्य के कथोपकथनों में काव्यत्मकता होने से उनका सारा रूखापन धुल जाता है और उसके स्थान पर एक ताजगी और तरलता दिखाई देती है। कथा के तारतम्य को बनाए रखने के लिए संवाद गत्वर, प्राणवान और अपने भीतर सशक्तता छिपाए होने चाहिए। उन्हें अधिक सशक्त एवं प्रभावशाली रूप प्रदान करने के लिए शब्द–विशेष एवं सूक्ति–गांभीर्य

---

[185] डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा, नयी कविता के नाट्य–काव्य, पृ॰ 66
[186] उदय शंकर भट्ट, विश्वामित्र और दो भाव नाट्य, पृ॰ (क) स्पष्टीकरण
[187] डॉ कृष्ण सिंहल, हिन्दी गीति नाट्य, पृ॰ 70

को मानदण्ड बनाकर भावावेगों को तीव्र और सक्ष्म अभिव्यक्ति देना कृतिकार का कर्त्तव्य हो जाता है।

1.8.4 मिथक के आयाम

मिथक अर्थात जो पौराणिकता का वहन करता हुआ आधुनिकता को भी प्रभावित करे। ''संक्षेप में कहा जाए तो ''मिथक अतीत और वर्तमान के बीच का अंतराल पाटने वाला सेतुबंध होता है।''[188] भारतीय मिथक का मूल स्रोत अध्यात्म संसार है। निरंतर बदलती परिस्थितियों में सत्य का अन्वेषण करने में और महान मानवीय संदर्भो के स्पष्टीकरण में मिथक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले सिद्ध हुए हैं, किन्तु ऐतिहासिकता, प्रागैतिहासिकता, पौराणिकता एवं लौकिकता के सीमित तथ्यों का वहन करने वाले मिथक जन–मानस को प्रभावित करने के साथ ही युग अक्षेपी दबाव से कुछ संशोधित–परिशोधित अवश्य होते रहते हैं। किसी भी मिथक का प्रयोग रचनाकार के लिए एक विशिष्ट चुनौती के रूप में उपस्थित होता है क्योंकि उस मिथक से जुड़े सामाजिक–नैतिक दायित्वों का निर्वाह तथा उससे संबधित लोक–आस्थाओं के स्रोतों की पर्याप्त जानकारी आवश्यक हो जाती है। युगीन संदर्भ में उसे व्याख्यायित करने के लिए जन मानस के अन्तर्विरोध, सत् और असत्, संघर्ष, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन की मांग का कटु यथार्थ कृतिकार को सहना पड़ता है। इसके बाद उसे मिथकीय सत्य को युगीन सत्य के अनुरूप बनाकर लोकमत को ध्यान में रखते हुए प्रासंगिक और ग्राह्य रूप में प्रेषित कर युगीन सार्थकता देनी पड़ती है।

हिन्दी में 'मिथक' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग का श्रेय आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को जाता है। इसके पश्चात् साहित्यिक संदर्भो में उपयुक्तता एवं महत्ता के प्रतिष्ठापन में डॉ॰ रमेश कुंतल मेद्य का योगदान रहा है। ''वस्तुतः मिथक के साथ पुराख्यान, पुराण, पुरावृत्त, दन्तकथा, निजंधरी कथा, गाथा, धर्म गाथा, इतिहास वेद इत्यादि समभाव–व्यंजक शब्दों का प्रयोग किया जाता रहा है। 'पुराख्यान' शब्द भी मिथक के समान अधिक प्रयुक्त हुआ है। स्पष्ट है कि मिथक योजना का आधार आख्यान वृत है, जो सत्य, असत्य, प्रकृति, लोक–विश्वास, किंवदन्ती परम्परा से पुष्ट होकर किसी भी धारणा पर अवस्थित रहता है।''[189] बृहत हिन्दी कोश के अनुसार 'मिथक' शब्द का अर्थ है – ''प्राचीन पुराकथाओं का तत्त्व जो नवीन स्थितियों में नये अर्थ का वहन करे।''[190] वस्तुतः मिथकीय परिकल्पना द्वारा समकालीन संदर्भो की यथार्थता की प्रतिष्ठा करना कृतिकारों का उद्देश्य रहा है। स्वतन्त्रता के बाद नाट्य–विधा में मिथकीय प्रयोगों का बाहुल्य रहा है। किन्तु बहुलता के साथ–साथ नाट्य–काव्यकार कहीं–कहीं मिथकीय परिकल्ना

---

[188] समीचीन, सम्पा॰ डॉ॰ त्रिभुवन राय, नाटक अंक, 9–10, पृ॰ 55

[189] वहीं, पृ॰ 56

[190] सम्पा॰ कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय, मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, बृहत हिन्दी कोश, पृ॰ 762

के साथ पूर्णतः न्याय करने में असमर्थ रहे हैं। 'महाभारत' और 'रामायण' आदि को आधार बनाकर चलने वाली नाट्य काव्य कृतियों में कुछ ऐसे तथ्य भी सामने आए हैं। जो समकालीन युग को एक सीधी और सरल दृष्टि देने में असफल सिद्ध हुए हैं। साथ ही इन तथ्यों से दिशा भ्रमित होने का खतरा भी उत्पन्न हो सकता है। इसलिए मिथक का प्रयोग कृतिकार के लिए अति सावधानी की वस्तु बन जाता है।

पौराणिक प्रसंगों को आधार बनाकर नए मूल्यों को संकेतिक कर, आधुनिक भावबोध को व्यक्त करना कृतिकार का जहाँ उद्देश्य होता है, वहाँ मिथक सफलता प्राप्त करते हैं। क्योंकि वर्तमान जीवन के यथार्थ और कुटताओं को उभारने के लिए पौराणिक संदर्भो को सशक्त प्रतीकात्मक रूप देना पड़ता है। मिथक जहाँ युग यथार्थ और सत्य को फलीभूत करता हुआ परम्परा से जुड़कर लोक चेतना का विस्तार करता है, वहीं पूर्णतः सफलता प्राप्त करता है। ''मिथक की सही पहचान और सार्थकता तो संदर्भ सापेक्षता में सोये भटके इन्सान को उठाकर खड़ा करने और सावधान करने में है।''[191] मिथकीय आयाम के माध्यम से साहित्यकारों की यही कोशिश रही है कि कैसे उन मूल्यों का अन्वेषण किया जाए जिसके कारण सम्पूर्ण मानवता को आज के संदर्भ में सार्थकता प्रदान की जा सके। ''युग धर्म की पहचान करके मिथक की सापेक्षता का प्रयोग करने वाले कलाकार अपवाद रूप में विशिष्ट हुआ करते हैं। युगानुरूप मिथकीय संशोधन वे भी करते हैं। लेकिन जिस वजह से मिथक, मिथक बना है। उस आन्तरिक पहचान को वे तोड़ते नहीं हैं अथवा धुमिल नहीं करते अपितु उसे बहुआयामी बनाते हुए युगानुकूल सुरक्षित भी रखते हैं..... इन रचनाकारों का मिथकीय ताना–बाना न केवल प्रासंगिक है अपितु जन–मंगल की आकांक्षा का वाहक भी।''[192]

मिथकीय पद्धति के सहारे रचनाओं में प्रस्तुत आधुनिक समय बोध को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रमुख स्वातन्त्रयोत्तर नाट्य–काव्यों में 'भारती' कृत अंधायुग, 'कनुप्रिया', 'नरेश मेहता' कृत 'संशय की एक रात', 'महाप्रस्थान', प्रवाद पर्व, 'जगदीश गुप्त' कृत 'शम्बूक', दुष्यन्त कुमार कृत 'एक कण्ठ विषपायी' इत्यादि सभी नाट्य काव्य मिथकीय आयामों का वहन करते हैं तथा काफी हद तक इस जिम्मेदारी का सफलतापूर्वक वहन करके युग विशेष को एक सफल दृष्टि देने में सफल हो सके हैं। पौराणिक प्रसंगों को लेकर चलने वाले इन नाट्यकाव्यों के कथा प्रसंगों में आधुनिक भाव बोध तथा नवीन संदर्भो को परिभाषित करने का किंचित् प्रयत्न भी किया गया हे। ''वर्तमान युग के संत्रास और संकट को हम झेल रहे हैं। दुर्गन्ध युक्त परम्पराओं, रूढ़ियों से परामुख हो नयी स्थापनाओं को स्थापित करने के लिए

---

[191] समीचीन सम्पा॰ डॉ॰ त्रिभुवन राय, नाटक अंक 9–10, पृ॰ 56
[192] समीचीन, सम्पा॰ त्रिभुवन राय, नाटक अंक 9–10, पृ॰ 60

संघर्षशील हैं। अभावयुक्त आधुनिक जीवन की सोची हुई सामाजिक चेतना को उद्‌बद्ध कर नवीन मूल्यों और नए अन्वेषकों की ओर निरन्तर अग्रसर होने के प्रयाास मे लगे हुए है।''[193]

निष्कर्षतः कृतिकारों ने पौराणिक मिथकों का आश्रय लेकर नाट्य–काव्य कृतियों की रचना की है। स्व संस्कृति की गरिमा सभी को स्वतः अपनी और आकृष्ट कर लेती है। नाट्य–काव्य जहाँ पौराणिक कथाओं का वहन करते हुए अपने प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों के वाहक बने है तथा इन मूल्यों को जन–मानस तक पहुँचाने में सफल भी हुए हैं। वहीं मिथकीय प्रसंगों में नए युग एवं नए बोध को रूपायित करते ये नाट्य काव्य साधारण मानव के समक्ष आज की ज्वलन्त समस्याओं को रख सके हैं तथा कुछ हद तक उन समस्याओं का समाधान करने का भी प्रयास करते हैं।

1.8.5 अभिव्यंजना :

काव्यगत अभिव्यंजना के स्वरूप का निर्धारण और शब्द संगीत के जटिल संयोजन से होता है। बिम्ब, प्रतीक और अलंकार अभिव्यंजना में संवेदना को रूपायित करते हैं इसके साथ ही इनमें छद, लय और तुक का भी सामंजस्य रहता है। ये सभी तत्त्व मिलकर काव्यगत अभिव्यंजना की सृष्टि करते हैं।

(क) बिम्ब योजना :

नाट्य–काव्य में नाटकीय क्रिया व्यापार की गत्वरता को मूर्त रूप प्रादन करने में बिम्बात्कता का विशेष महत्त्व होता है। काव्य चिंतकों ने भाषा की संमूर्तन विधियों को भाषा की अलंकरण सामग्री कहा है किन्तु क्षण–प्रतिक्षण नवीन भाषायी शक्ति अलंकारों के घेरे में पूर्णतः बंध पाने में असमर्थ रहीं, अतः विभिन्न प्रकार के विश्लेषणों और विवेचनों से यह निष्कर्ष निकाला गया कि ''कविता में प्रयुक्त शब्दों का सामर्थ्य उसकी बिम्बापरकता में है।''[194] हिन्दी में बिम्ब शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'इमेज' शब्द के पयार्य रूप में होता है। शब्दों की सार्थकता के माध्यम से बिम्ब–विधान मूर्त रूप धारण करता है। 'यों कहना चाहिए कि सार्थक शब्द ही वह उपकरण सामग्री है जिसमें बिम्ब का मूर्त रूप प्रकट होता है।''[195] ''बिम्ब विधान में कल्पना शक्ति के साथ ऐन्द्रिय अनुभवों का सम्मिश्रण होता है। बिम्ब किसी वस्तु की आत्मीय अनुभूति के सन्दर्भ मे वह ऐन्द्रिय संवेद्य रचना पद्धति है जिसके पीछे कवि के अन्तः करण दीर्घ–कालीन आत्मा–संघर्ष तथा शक्तिशाली वासना की सत्ता मौजूद रहती है और कविता के अन्तर्गठन को अर्थ के स्वांयत रूप में अविभाज्य गतिशीलता बनाए रखता है।''[196] नाट्य–काव्य में बिम्ब को प्रायः दृश्यता के अर्थ में स्वीकार कर उपयोग में लिया गया है। काव्य बिम्ब का प्रयोग सर्वप्रथम

---

[193] डॉ॰ सुरेश गौतम, वीणा गौतम, त्रिकोण में उभरती आधुनिक संवेदना, पृ॰ 188
[194] डॉ॰ रविनाथ सिंह, नयी कविता की भाषा, पृ॰ 207
[195] डॉ॰ रविनाथ सिंह, नयी कविता की भाषा, पृ॰ 208
[196] डॉ॰ अनिल मेहरोत्रा, कुवँरनारायण और उनका साहित्य पृ॰ 147

सही रूप में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया तथा बिम्ब के संदर्भ में संश्लिष्ट शब्द का प्रयोग किया। ''बिम्ब ग्रहण वही होता है जहाँ कवि अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वस्तुओं के अंग प्रत्यंग वर्ण आकृति तथा उनके आस–पास की परिस्थित का परस्पर संश्लिष्ट विवरण देता है। बिना अनुराग के ऐसे सूक्ष्म ब्यौरों पर न दृष्टि जा सकती है, न रम सकती है।''[197] अतः बिम्ब योजना नाट्य काव्य को गति और इच्छित आकार ग्रहण करने में सहायता प्रदान करती है। ''बिम्ब विधान वाली एक रचना जीवन भर के बिम्ब विधान शून्य लेखन से श्रेष्ठ और महान है।''[198]

नाट्य–काव्य की रचना में बिम्ब योजना के अन्तर्गत रूपक एवं अन्य अलंकारों की रचना का भी अपना महत्व है। पाठकों की ऐन्द्रिय अनुभूति को जागृत एवं प्रभावित करने के लिए तथा विचारों एवं भावों को ज्यों का त्यों रूपायित करने के लिए रूपक की सहायता अनिवार्य हो जाती है। रूपक में अर्थ की सीमा व्यापक्ता के साथ–साथ प्रतीकात्मकता भी धारण कर लेती है। डॉ॰ हरिवंश पाण्डेय कृत पुस्तक 'धर्मबीर भारती चिंतन और अभिव्यक्ति' के अनुसार ''नया कवि अनुभूति को उसके वातावरण के साथ देना चाहता है। अपनी अनुभूति को उसकी समग्रता एवं अविचल रूप में ग्रहण करने के लिए उसकी रचना–प्रक्रिया, बिम्ब विधान को गत्यात्मक रूप से ग्रहण करना पड़ता है।''[199] तीसरा सप्तक के कवि केदारानाथ सिंह का यह कथन सर्वथा समीचीन है कि ''बिना चित्रों प्रतीकों, रूपकों और बिम्बों की सहायता के मानव–अभिव्यक्ति का अस्तित्व प्राय असम्भव है, यहाँ तक कि जब हम शुद्ध विचार के क्षेत्र में पहुँचकर गम्भीर तत्त्व दर्शन की चर्चा करते हैं। तभी हमारे उपचेतन में कहीं–न–कहीं उन विचारों के वर्ण–चित्र उभरते–मिटते रहते हैं। बिम्ब निर्माण की यह प्रक्रिय पूरे मानव–जीवन में फैली हुई है।''[200] डॉ॰ जगदीश गुप्त ने प्रसिद्ध बिम्बवादी कवि एज़रा पाउण्ड की साक्षी देकर सूक्ष्म चिन्तन को भी एन्द्रिय संवेदन से सम्बद्ध मानते हुए कहा है। ''मान्यता तो यहाँ तक है कि बुद्धि में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो संवेदना से छनकर न पहुँचा हो।''[201] बृहत हिन्दी कोश के अनुसार – ''बिम्ब विधान (इमेजरी) आधुनिक काव्य का एक उपकरण या बिम्ब सृष्टि है।।''[202]

बिम्ब विधान के माध्यम से नाट्य काव्य मूर्त ओर ग्राह्य बनने के साथ संक्षिप्त और प्रभावशाली बन जाता है। आन्तरिक आवेगों को वास्तविकता का धरातल प्रदान करने के लिए बिम्ब विधान एवं प्रतीक योजना का आश्रय लेना पड़ता है किन्तु भावों की तीव्रता एवं भावोद्वेलन की सृष्टि में वे ही बिम्ब अधिक व्यंजनशील होते है जो जीवन सजग संवेदनाओं और यथार्थ के अनुभवों से सम्पृंक्त होते हैं। नाट्य काव्यकार अपने जीवन एवं अपने युग (समय) के जीवित

---

[197] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि (भाग–1), पृ॰ 118
[198] सम्पा॰ डॉ॰ जगदीश गुप्त, नयी कविता, अंक–7, पृ॰ 187
[199] डॉ॰ हरिवंश पाण्डेय, धर्मबीर भारती चिंतन और अभिव्यक्ति, पृ॰ 250
[200] सम्पादक अज्ञेय, तीसरा सप्तक, वक्तव्य, केदारनाथ सिंह, पृ॰ 169
[201] सम्पा॰, जगदीश गुप्त तथा विजयदेव नारायण साही, नयी कविता, संयुक्तांक 5–6, पृ॰ 21
[202] सम्पा॰ कलिका प्रसाद, मुकुन्दी लाल श्रीवास्तव, राजबल्लभ सहाय, बृहत हिन्दी कोश, पृ॰ 808

सत्यों को काव्य चित्रों के माध्यम से सफल अभिव्यक्ति प्रदान करने का प्रयत्न करना हैं। इन चित्रों के अभाव में मानव हृदय की सूक्ष्म संवेदनाओं एवं भावनाओं को अभिव्यक्ति नहीं दी जा सकती है। काव्य का गद्य की अपेक्षा शक्तिशाली होने का कारण बिम्ब ही है। गद्य में बिम्ब इतना सशक्त नहीं बन पाता जितना वह काव्य में होता है। इस संबध में डॉ॰ सिद्धनाथ कुमार द्वारा दिया गया वक्तव्य उपयुक्त प्रतीत होता है। ''यदि पद्य अभी भी काव्यात्मक चित्रों का इतना अच्छा माध्यम है तो वह इसलिए कि अपनी रूपगत सीमाओं और आकृतिगत विशेषताओं के कारण पद्य चित्र समष्टि में अधिक तीव्रता अधिक स्पष्ट ध्वनियों, अधिक जटिल संबधों की सृष्टि कर सकता है।''[203] श्री शंभूदत्त पाण्डेय के अनुसार – ''दर्शन की गम्भीरता भी बिम्ब योजना में पायी गयी है। क्योंकि नए कवि ने शिल्प विधान के नए प्रकार की प्रतीक योजना, बिम्ब विधान छंद शक्ति, उपमान और भाषा तथा शब्द के चयन से संयोजित कर एक विशिष्ट धरातल प्रदान करने की चेष्टा की है।''[204]

नाट्य–काव्य में कथागत वर्णनों के बीच, बिम्बों का यदा–कदा आयोजन उसे कलात्मक और ग्राह्य बना देता है। शास्त्र के अनुसार बिम्ब अनुभूति का मूर्त वाहक होने के कारण रचना प्रक्रिया का ऐसा केन्द्र बिन्दु होता है जिसमें काव्य का आन्तरिक एवं बाह्य दोनों पक्ष समाहित होत हैं। अतः बिम्ब कवि का वह शब्द चित्र है जो कवि के मानसिक संवेगों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। बिम्ब निर्माण में कवि की कल्पना का चमत्कार निहित रहता है। नाट्य–काव्यों की रचना भी मानसिक संवेगों की अभिव्यक्ति के साथ–साथ कल्पना के अंश को धारण किए हुए है तथा भाव गर्भित शब्द–चित्र ही वास्तव में यहाँ बिम्ब का स्वरूप ग्रहण करते हैं। बिम्ब–विधान का शास्त्रीय विवेचन इस प्रकार है – ''जो मूल वस्तु प्रतिबिम्ब या छाया फेंकती है। शास्त्रीय भाषा में वह बिम्ब कहलाती है।''[205] अर्थात ''जब कलाकार अमूर्त मर्म संवेगों की यथा तत्त्व अभिव्यक्ति के लिए बाह्य जगत में ऐसी वस्तुओं को कला के फलक पर इस रूप में उपस्थित कर सके जिसे कलाकार पहले गुजर चुका हो, तब उन योजित वस्तुओं की वैसी प्रस्तुति को हम बिम्ब विधान कहते हैं।''[206]

डॉ॰ नगेन्द्र बिम्ब को अपनी पुस्तक काव्य–बिम्ब में इस प्रकार से परिभाषित करते हैं। ''काव्य बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी छवि है, जिसके मूल में भाव की प्रेरणा निहित रहती है।''[207] इसके साथ–साथ डॉ॰ नगेन्द्र का मन्तव्य यह भी है कि ''भारतीय काव्यशास्त्र के लिए बिम्ब कोई अज्ञात वस्तु नहीं है।''[208] उन्होंने अपनी पुस्तक

---

[203] डॉ॰ सिद्धनाथ कुमार, सृष्टि की साँझ तथा अन्य काव्यनाटक (भूमिका), पृ॰ 15
[204] डॉ॰ श्री शंभूदत्त पाण्डेय, नयी कविता : एक मूल्यांकन पृ॰ 108
[205] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि भाग–2, पृ॰ 1
[206] डॉ॰ कुमार विमल, सौन्दर्य शास्त्र के तत्त्व, पृ॰ 204
[207] डॉ॰ नगेन्द्र, काव्य–बिम्ब, पृ॰ 5
[208] वही, पृ॰ 44

रस–सिद्धान्त में बिम्ब को काव्य का महत्वपूर्ण तत्त्व स्वीकार किया है – ''बिम्ब निश्चय ही कला की सिद्धि है।''[209]

अतः बिम्ब कवि के कल्पना द्वारा निर्मित वह मानसिक दृष्टि है, जिसमें शब्द योजना, अलंकार और प्रतीकों के माध्यम से संवेदनाओं को संयुक्त रूप देकर साकार किया जाता है। बिम्ब भावों को आकार देकर उसे ग्रहण करने योग्य रूप तो देता ही है साथ ही उसे अधिक प्रभावोत्पादक भी बना देता है।

(ख) प्रतीक–विधान :

जब अप्रत्यक्ष विशद् भावबोध को प्रभावशाली व सौन्दर्य पूर्ण ढंग से चित्रित करना होता है तभी कवि प्रतीकों का सहारा लेता है। प्रतीको द्वारा अप्रस्तुत वस्तुओं का बोध या परिज्ञान कराया जाता है। काव्य में भावोत्तेजना लाने के लिए प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है। बृहत हिन्दी शब्द कोश में प्रतीक विधान को इस प्रकार परिभाषित किया गया है – ''वह दृश्य वस्तु या तथ्य जो किसी अदृश्य वस्तु या तथ्य के प्राय अनुरूप होने के कारण उसके प्रतिनिधि या प्रतिरूप में मान ली जाय अर्थात जिस पर किसी का आरोप किया गया हो, वह प्रतीक विधान कहलाती है।''[210] डॉ॰ हरिवंश राय पाण्डेय के अनुसार ''प्रतीक विधान किसी भाव विचार या वस्तु का पूर्ण चित्रण न कर मात्र सांकेतिक अभिव्यक्ति करता है। प्रतीक एक प्रकार से रूढ़ उपमान का ही दूसरा नाम है, अर्थ के अनेक सम्भवनाओं से विरहित होकर अर्थ विशेष के लिए सीमित हो उसे उसी अर्थ में सामाजिक स्वीकृति मिल जाती है।''[211] प्रतीकात्मकताअर्थ और भाव के अनन्त विस्तार को शब्द की परिधि में सीमित कर देती है। प्रतीक बिम्ब के सर्वाधिक निकट होता है। क्योंकि प्रत्येक प्रतीक मूलतः बिम्ब होता है, मौलिक रूप से क्रमशः विकास पाकर वह प्रतीक बन जाता है। डॉ॰ देवराज ने अपनी पुस्तक 'नयी कविता' में प्रतीक को इस प्रकार परिभाषित किया है। ''प्रतीक वह दृश्य वह प्रस्तुत तत्त्व है जो अप्रस्तुत का प्रतिनिधित्व कर उसे अभिव्यक्त करता है। प्रतीक के रूप में जिस वस्तु का चुनाव किया जाता है उसके पीछे विकास की व्यापक परम्परा होती है और वह उसकी अभिव्यक्ति करता है जैसे –कमल से सौन्दर्य, तिमिर से अज्ञान, पृथ्वी से सहनशीलता व सहिष्णुता, समुद्र से विस्तार और गंभीर्य, सिंह से वीरता व पौरूष, लोमड़ी से चालाकी, बगुले से कुटिलता का व्यापक भावबोध उभर कर

---

[209] डॉ॰ नगेन्द्र, रस सिद्धान्त, पृ॰ 357

[210] सम्पा॰ कालिका प्रसाद, मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, राजवल्लभ सहाय, बृहत हिन्दी कोश, पृ॰ 732

[211] डॉ॰ हरिवंश पाण्डेय, धर्मबीर भारती : चिंतन और अभिव्यक्ति, पृ॰ 250

सामने आता है।''[212] अतः स्पष्ट है कि प्रतीक व्यापक भावबोध की संक्षिप्त प्रभावशाली अभिव्यक्ति है। डॉ॰ कैलाश के शब्दों में – ''प्रतीक विस्तार को संक्षेप में कहने का माध्यम है।''[213]

नाट्य–काव्य में निहित अन्तर्जीवन की समस्याओं के सूक्ष्मतर स्तर की अभिव्यक्ति प्रतीकों द्वारा ही संभव है। नाट्य काव्यकार प्रतीकों के माध्यम से गूढ़ संवेदनाओं को अभिव्यक्ति देने में सफल होता है तथा सहृदय की संवेदनाओं को नए कोणों से स्पर्श करता हुआ कवि अपनी अभिव्यक्ति को व्यापकत्व प्रदान करता है क्योंकि प्रतीक किसी सूक्ष्म जीव की अभिव्यक्ति हेतु एक अपेक्षित स्थूल तत्त्व का चुनाव ही है। ''प्रतीक काव्य में उच्चतर मूल्यों का वाहक होता है। कलाकार अपने जिस अनुभूत अंश को सामान्यतया व्यक्त नहीं कर पाता, उसकी अभिव्यक्ति वह प्रतीकों के सहारे करता है। इस प्रकार प्रतीक विधान कवि के द्वारा की गयी भाषा की विशिष्ट प्रयोग विधि है।''[214] नाट्य–काव्य में प्रतीकों का प्रयोग उस दृश्य (गोचर) वस्तु के लिए किया गया है जो हमारे समक्ष अदृश्य (अगोचर) का विधान भी प्रस्तुत कर सके। अतः नाट्य–काव्यों में पौराणिक संदर्भो को लेकर उन्हें आधुनिक युग चेतना के अनुरूप नयी प्रतीकात्मक अर्थवता देने का प्रयास किया गया हैं नाट्य–काव्यों में प्रतीकों का बहुत महत्त्व है। 'जब हृदय की कोमल वृतियों को प्रतीक के माध्यम से काव्यकार अभिव्यक्त करता है तब उनकी प्रेषणीयता बहुत बढ़ जाती है। ये प्रतीक सहज ही हृदय पर स्थायी प्रभाव डालते है। प्रतीकात्मक काव्य में भावों का स्पष्ट उल्लेख न कर उनमें विशेषता लाने के लिए सर्वनामों का प्रयोग किया जाता है कहीं–कहीं स्वच्छन्द प्रतीकों का प्रयोग भी होता है।''[215] हिन्दी साहित्य कोश में प्रतीक की व्याख्या इस प्रकार की गई है। – ''किसी अन्य स्तर की समान रूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है। अमूर्त, अदृश्य, अप्रस्तुत विषय का प्रतीक प्रतीकार मूर्त, दृश्य, श्रव्य, प्रस्तुत वस्तु द्वारा करता है।''[216]

समर्थ नाट्य काव्यकार अपनी कल्पना और बुद्धि का प्रयोग करते हुए आवश्यक रूप में सांस्कृतिक प्रत्ययों और प्रतीकों का निर्माण करता है। ये प्रत्यय जहाँ अनुभूति यथार्थ के संकेत होते हैं, वहीं अनुभूति यथार्थ परम्परा की विशेषताओं का साररूप में निर्देश करते हैं। वहाँ कुछ हद तक कल्पित तत्त्वों की संकल्पनाओं का रूप भी धर लेते है। ''जहाँ तक किसी परम्परा के प्रत्यय व प्रतीक अनुभव जगत की विशेषताओं को उजागर करते है। वहाँ तक वे आगे आने वाले युगों में भी ग्राह्य एवं उपयोगी बने रहते हैं।''[217]

---

[212] डॉ॰ देवराज, नयी कविता, पृ॰ 95
[213] मंजुला पुरोहित, नयी कविताः संवेदना और शिल्प, पृ॰ 73
[214] डॉ॰ रविनाथ सिंह, नयी कविता की भाषा, पृ॰ 215
[215] डॉ॰ शिव शंकर कटारे, गीति नाट्य शिल्प और विवेचन, पृ॰ 58
[216] सम्पा॰ डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, भाग–1, पृ॰ 471
[217] डॉ॰ राजकुमार वर्मा, नयी कविता की रचना यात्रा, पृ॰ 40

(ग) अलंकार योजना :

काव्य की शोभा बढ़ाने वाली या अनुभूति में वृद्धि करने वाली उपमान योजना को ही अलंकार कहते हैं। काव्यशास्त्रीय शब्दावली में प्रस्तुत को 'उपमेय' और अप्रस्तुत को 'उपमान' कहा जाता है। अलंकार कवि के मूल भाव में अभिवृद्धि करते हैं। भारतीय एवं पाश्चात्य आचार्यो ने काव्य में अलंकारों को महत्त्व को स्वीकार किया है। आचार्य भामह ने काव्य में अलंकारों को अनिवार्य तत्त्व माना है। उनके अनुसार – ''शब्द और अर्थ की वक्रता का नाम अलंकार है।''[218] आचार्य दण्डी ने अलंकार के काव्य का अनिवार्य धर्म सिद्ध करके भामह की अलंकार–संबधी विचार धारा को अग्रसर किया है। उसने ''अलंकारों को काव्य का शोभा कारक धर्म माना है।''[219] वहीं आचार्य वामन ने ''काव्य के शोभाकारक धर्म को अलंकार न कहकर 'गुण' कहा है। और उन गुणों के उत्कर्ष में वृद्धि करने वाले तत्त्वों को अलंकार कहा है।[220] इसी तथ्य पर विस्तार से विचार करते हुए वामन ने काव्य के सम्पूर्ण सौन्दर्य को ही अलंकार कहा है।''[221] आचार्य विश्वनाथ ने अलंकारों को शब्द और अर्थ का अस्तिर धर्म कहते हुए उनको कवच आदि की भांति शोभा को बढ़ाने वाले तथा रस के उपकारक माना है।''[222] अलंकार अदृश्य की योजना द्वारा अनुभूति के विषय को मूर्त रूप मे उपस्थित करके, संबंधित अनुभूति को तीव्रता प्रदान करते है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दानुसार – ''वस्तु या व्यापार की भावना अधिक चटकीली करने और भावों को अधिक उत्कर्ष तक पहुँचाने के लिए किसी वस्तु का आकार या गुण बहुत बढ़ाकर दिखाना पड़ता है, कभी उसके रंग रूप या गुण की भावना को, उसी प्रकार के और रूप–रंग मिलाकर, तीव्र करने के लिए समान रूप और धर्म वाली और–और वस्तुओं के सामने लाकर रखना पड़ता है। कभी–कभी बात को घुमा–फिराकर कहना पड़ता है। इस तरह के भिन्न–भिन्न विधान और कथन के ढंग अलंकार कहलाते हैं। इनके सहारे से कविता अपना प्रभाव बहुत कुछ बढ़ाती है। कहीं–कहीं तो इसके बिना काम ही नहीं चल सकता।''[223] अलंकार अनुभूति का गोचर और मूर्त रूप उपस्थित करते हैं।

अलंकार का शाब्दिक अर्थ सौन्दर्य–प्रसाधन या आभूषण है। 'अलंकरोतिति अलंकार : 'तथा' अलंक्रियते अनेन इति अलंकार' के अनुसार कवियों की वाणी के सौन्दर्य प्रसाधन अलंकार है। काव्य में शाब्दिक चमत्कार ही अलंकार हैं अलंकारों का मूल वक्रोक्ति माना जाता है। काव्य में निहित शब्द अर्थ साधारण शब्दार्थ नहीं होते, अपितु वे शैलीगत वैशिष्टय लिए होते हैं। काव्य में निहित शब्दार्थो की विशिष्टता और चमत्कारिता ही अलंकार है। डॉ॰ नन्द दुलारे वाजपेयी के

---

[218] आचार्य भामह, काव्यालंकार, पृ॰ 36
[219] आचार्य दण्डी, काव्यदर्श, पृ॰ 2
[220] आचार्य वामन, काव्यालंकर सूत्रवृत्ति, पृ॰ 31
[221] वही, पृ॰ 12
[222] आचार्य विश्वनाथ, साहित्य–दर्पण, पृ॰ 20
[223] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि (पहला भाग) पृ॰ 145

शब्दों में – ''आधुनिक युग में जिसे हम बिम्ब विधान कहते हैं। वही मुख्यतः अलंकारों की वस्तु है। काव्य में बिम्ब योजना अव्यक्त को व्यक्त रूप प्रदान करती है।''[224] डॉ॰ नगेन्द्र ने भी ''सादृश्य अलंकारों का संबंध विभावन व्यापार से जोड़कर प्रकारान्तर से उन्हें बिम्ब–विधान में उपयोगी माना है।''[225] इसी संदर्भ में उन्होंने अलंकार को रसात्मक अभिव्यक्ति का अनिवार्य तत्त्व घोषित करते हुए कहा है। ...''सत्य तो यह है कि अलंकार केवल रस के उपकारक ही नहीं वे रस की अभिव्यक्ति के अनिवार्य माध्यम हैं। काव्य की भाषा – व्यापक अर्थ में अलंकृत हो सकती है। कोई भी चमत्कार–विहीन शब्दार्थ के माध्यम से रमणीय अर्थ या भाव का प्रतिपादन नहीं कर सकता और न कोई आलोचक ही इसे सिद्ध कर सकता है।''[226]

नाट्य–काव्य का समस्त सौन्दर्य उसमें निहित अलंकारों पर निर्भर होता है। सामान्यतः अलंकार वस्तु विधान के अंग है जिनके द्वारा प्रबन्ध कवि अपनी कथा रोचक रीति से विन्यास करता है। अलंकार–योजना और बिम्ब–विधान का स्रोत अप्रस्तुत विधान है। काव्य में प्राय दो प्रसंग एक दूसरे से सटाकर प्रस्तुत किये जतो है। कवि की अनुभूति से जुड़ा मूल प्रसंग 'प्रस्तुत' कहलाता है। प्रस्तुत के भाव के प्रभाव में वृद्धि करने के लिए मानवीय क्षेत्र से जो अन्य प्रसंग चुनकर लाया जाता है वह 'अप्रस्तुत' विधान कहलाता है। एक स्थान पर डॉ॰ नगेन्द्र ने भी ''अलंकार, अप्रस्तुत–विधान, बिम्ब–योजना का प्रयोग अलंकार के पर्यायवाची शब्दों के रूप में किया है।''[227] वहीं भारतीय काव्यशास्त्र में आनन्दवर्धन ने मानवीकरण की प्रवृत्ति को सैद्धान्तिक रूप से मान्यता प्रदान की है।''[228] वस्तुतः नाट्य–काव्यों के समस्त सौन्दर्य में वृद्धि करने के साथ–साथ उन्हे अधिक सार्थक बनाने के लिए अलंकारों का सन्निवेश अनिवार्य है।

(घ) छंद लय एवं तुक :

छन्द काव्य का आन्तरिक तत्त्व है और काव्य तीव्र भावों की अभिव्यक्ति का सफल माध्यम है। हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार – ''छंद' शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख 'ऋग्वेद' में मिलता है। इसकी व्युत्पति 'छंद्' धातु से मानी गयी है जिसका अर्थ आवृत करने या रक्षित करने के साथ–साथ प्रसन्न करना भी होता है।''[229] अतः छन्द काव्य की रक्षा करने का एक उपकरण प्रतीत होता है। परन्तु नाट्य–काव्य मुक्त छंद पर आश्रित रहता है। मुक्त छंद को साहित्य में इस प्रकार परिभाषित किया गया है। ''मुक्त छंद में छंद तो मूलतः रहता है पर उसकी प्रकृति मुक्त होती है। परन्तु छंद मुक्त कहने से साधारणतया छंद हीनता का बोध होता

---

[224] सम्पा॰ नन्द दुलारे वाजपेयी, आलोचना (सम्पादकीय) अप्रैल 1958 (पूर्णांक 26) पृ॰ 3
[225] डॉ॰ नगेन्द्र, रस सिद्धान्त, पृ॰ 324
[226] वही, पृ॰ 324
[227] डॉ॰ नगेन्द्र, रस सिद्धान्त, पृ॰ 324
[228] आचार्य आनन्द वर्धन, ध्वन्यलोक, पृ॰ 43
[229] सम्पा॰ धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, भाग–1, पृ॰ 249

है। अज्ञेय ने इसे 'मुक्त छंद और 'छन्द हीन' के बीच की स्थिति का माध्यम माना है। जिसमें छंद का अभाव हो ही, ऐसा आवश्यक नहीं है।''[230] आचार्य शुक्ल ने छंद की महत्ता को रेखांकित करते हुए लिखा है – ''अतःनाद सौन्दर्य का योग भी कविता का पूर्ण स्वरूप खड़ा करने के लिए कुछ न कुछ आवश्यक होता है। इसे हम बिल्कुल हटा नहीं सकते। जो अन्त्यानुप्रास को फालतू समझते हैं, वे छंद को पकड़ते रहते हैं, जो छंद को फालतू समझते है वे लय में लीन होने का प्रयास करतें है। संस्कृत से संबध रखने वाली भाषाओं में नाद–सौन्दर्य के समावेश के लिए बहुत अवकाश रहता है। अतः अंग्रेजी आदि अन्य भाषाओं की देखा–देखी जिनमें इसके लिए कम जगह है, अपनी कविता को इस विशेषता से वंचित कैसे कर सकते हैं।''[231] वहीं डॉ॰ नगेन्द्र ने भी छंद की महत्ता को पूरी शक्ति के साथ निरूपित किया है। वे लिखते हैं – ''भाव का रूप उच्छ्वासमय होता है। अतः उससे गर्भित होकर शब्द में गति–लय अनायास ही उत्पन्न हो जाती है और चूँकि अभिव्यक्ति की स्थिति तक पहुँचते–पहुँचते यह भाव समाकलित हो जाता है, अतः लय भी समाकलित होकर सहज क्रम से छंद बन जाती है। उधर कल्पनात्मक अभिव्यक्ति का एक ही अथ है। बिम्बों द्वारा मूर्तीकरण। अतः छंद और बिम्ब कविता की अभिव्यंजना के अनिवार्य तत्त्व हैं ऐसी मेरी निश्चित धारण है।''[232]

भावों के अनुरूप लय और छंदों के प्रयोग ने नाट्य–काव्य विधा को सशक्त रूप देकर अन्य विधाओं के समक्ष लाकर खड़ा कर दिया है। नाट्य–काव्य विधा के लिए मुक्त छन्द बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। डॉ॰ शकुन्तला दूबे के अनुसार – ''जहाँ तक मुक्त छन्द की प्रवृत्तियों का सवाल हैं, वे अनियमितता, असमानता, स्वच्छन्द गति और भावानुकूल अभिव्यक्ति भी लय से जुड़ी होती है।''[233] मुक्त छंद के प्रयोग के साथ–साथ लय और टोन का उठना–गिरना, भावों के उतार–चढ़ाव के साथ–साथ परिवर्तित होते जाना नाट्य–काव्य की विशेषता है। डॉ॰ त्रिगुणायत ने लय को इस प्रकार परिभाषित किया है – ''नाद की सुसंगति और सुषमामय अभिव्यक्ति को लय कहते हैं। .... लय केवल बाह्य वस्तु नहीं है। हमारी आत्मा की संगीात्मक अभिव्यक्ति है। जैसी जिसकी आत्मा होगी, वैसी ही उससे उद्‌भूत लय का स्वरूप होगा। लय का स्वरूप प्रेरणा पर आधारित रहता है।''[234] आधुनिक काल की जटिल बाह्य परिस्थितियों और मनुष्य की अन्तर्द्वन्द्वात्मक मन' स्थितियों के कारण कविता में 'भावना' के स्थान पर 'विचार' तत्त्व पर अधिक बल दिया जाने लगा। फलतः आधुनिक कवियों का छंद की अनिवार्यता के प्रति दृष्टिकोण बदलने लगा। उदाहरण स्वरूप धर्मवीर भारती कृत 'अंधा युग' की रचना मुक्त छंद में हुई है, फिर भी लय और तुक की दृष्टि ये एक विशिष्ट रचना है। डॉ॰ संजीव कुमार ने लिखा

---

[230] वही, पृ॰ 249
[231] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि (भाग–1) पृ॰ 119
[232] डॉ॰ नगेन्द्र, शोध और सिद्धान्त, पृ॰ 53
[233] डॉ॰ शकुन्तला दुबे, काव्य–रूपों के मूल स्त्रोत एवं उनका विकास, पृ॰ 542
[234] डॉ॰ गोविन्द त्रिगुणायत, शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, पृ॰ 2–3

है कि ''अंधा युग' में नाटकीयता और कवित्व के समन्वय के उद्देश्य से लयों और तुकों के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किये गये हैं।''[235] अतः मुक्त छंद के साथ–साथ लयात्मकता रस प्रवाह नाट्य–काव्य के आवश्यक अपादान है तथा इनका ध्यान रखना नाट्य काव्यकार के लिए अनिवार्य हो जाता है।

1.9 नाट्य–काव्य का विधागत वैशिष्ट्य :

नाट्य–काव्य की रचना न तो अन्तर्मुखी कवि कर पाता है और नहीं बहिर्मुखी इनकी रचना केवल बहिरन्तर्मुखी कवि ही सफलतापूर्वक कर पाते हैं। क्योंकि इनमें अनुभूति और वस्तु परकता का इतना उत्कृष्ट संयोजन होता है कि पृथकता का आभास ही नहीं होता। इसलिए ये सार्थक रूप से नाट्य–काव्य की रचना कर सकते हैं। नाट्य–काव्य में कवि सर्वत्र व्यक्त और अव्यक्त दोनों रूपों में विद्यमान रहता है। कवि की इस अप्रत्यक्ष अभिव्यक्ति के लिए अत्यधिक कलात्मक संयम की अपेक्षा की जाती है। जो काव्यकृति को उत्कर्ष प्रदान करता है। इस प्रकार यह विधा श्रेष्ठ मानी जाती है। डॉ॰ हुमचन्द राजपाल ने अपनी पुसतक 'नयी कविता की नाट्य मुखी भूमिका' में लिखा है। ''नाट्य–काव्य एक विशिष्ट विधा है।''[236] उन्होंने इसे विशिष्ट विधा स्वीकार करते हुए इस प्रकार परिभाषित किया है। – ''नाट्य काव्य एक विशिष्ट विधा इसलिए है। क्योंकि नाट्यकाव्य एक साथ पाठ्य भी है और अभिनेय भी, काव्य भी है और नाट्य भी, तथा प्रबन्ध काव्य होने के नाते व्यक्तिपरक भी है वस्तुतः नाट्य–काव्य में नाटकीयता तथा काव्यात्मक वस्तुपरक तथा व्यक्तिपरक, पाठ्य तथा रंगमंचीय सभी तत्त्वों का ऐसा जटिल संघात घटित होता है कि उनका पृथक–पृथक अस्तित्व नहीं रहता। कविमानस की सभी क्षमताओं–कल्पना, भावना और बुद्धि का जैसा उत्कृष्ट संयोजन नाट्य काव्य में सभव है, वैसा अन्य विधा में संभव नहीं है। .....नाट्य–काव्य विधा में कवि अभिव्यक्ति तो करता है, किन्तु प्रत्यक्ष रूप में नहीं, वरन् कथानक और पात्रों के माध्यम से प्रच्छन्न रूप में।''[237]

काव्य की नाटकीय शैली में अभिवयक्ति या नाट्य शैली में अभिव्यंजना को 'नाट्य–काव्य' नाम से विभूषित किया गया है। नाट्य काव्य में अनेक तत्त्वों का अत्यधिक संश्लिष्ट रूप से संयोजन किया गया है। डॉ॰ वर्मा ने इसे इस प्रकार रेखांकित किया है। – ''जिस काव्य रूप में परस्पर विरोधी तत्त्वों का जितने अधिक संश्लिष्ट रूप में उदात्त स्तर पर कौशल पूर्ण संयोजन होगा, उसमें उतनी ही सशक्त और महान होने की संभावना निहित होती है।''[238] इससे स्पष्ट है कि अनेक तत्त्वों के संश्लेषण से बनी यह विधा अत्यन्त विशिष्ट है और

---

[235] डॉ॰ संजीव कुमार, अंधा युगः निकष पर, पृ॰ 128
[236] डॉ॰ हुकुम चन्द राजपाल, नयी कविता की नाट्य मुखी भूमिका, पृ॰ 14
[237] डॉ॰ हुकुम चन्द राजपाल नयी कविता की नाट्य मुखी भूमिका, पृ॰ 14–15
[238] डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा, नयी कविता के नाट्य काव्य पृ॰ 97

हिन्दी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। डॉ॰ प्रमिला के अनुसार नाट्य काव्य'' एक ऐसी नाट्य शैली है जिसमें काव्य को नाट्य के स्तर पर और नाट्य को काव्य के स्तर पर उद्घाटित करने की शक्ति होती है। .... यदि समग्र रूप से नाट्य काव्य पर विचार करके देखा जाए तो नाट्य–काव्य एक ऐसा काव्य रूप है जिसकी मूल भावना एवं शैली आत्माभिव्यंजक होती है और नाटकीय कथोपकथन का आधार लेते हुए भावों की अभिव्यंजना की जाती है। इस प्रकार कथासूत्र गति प्राप्त करता है।.... यह काव्य विधा मनुष्य को उसके जीवन के गूढ़ रहस्यों एवं उनके निकट आने की, उन्हें समझने की इच्छा को पूर्ण कर सकती है।''[239] अतः स्पष्ट है कि काव्य में विरोधी तत्त्वों का जितना अधिक संयोजन होगा काव्य उतना ही सशक्त एवं सफल होगा। इस प्रकार यह विधा अपने अन्दर अनेक परस्पर विरोधी तत्त्वों को समेट कर उनका सफलतापूर्वक नियोजन कर अपना विधागत वैशिष्ट्य स्वयं ही स्थापित कर देती है।

1.10 स्वातन्त्र्योत्तर नाट्य–काव्यों की पृष्ठ भूमि :

किसी भी युग का साहित्यकार अपनी युगी परिस्थितियों से प्रेरणा लेकर ही नवीन साहित्य का सृजन करता है। अपने युगीन जीवन की अनुभूति को वह काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है। स्वातन्त्र्योत्तर नाट्य–काव्यों में भी लेखकों ने उस समय की परिस्थितियों एवं परिवेश का गहन चित्र प्रस्तुत किया हैं शताब्दियों से मिली गुलामी एवं परतन्त्रता के पश्चात् देश ने स्वतन्त्रता प्राप्त की। स्वतन्त्रता मिलने पर सम्पूर्ण भारतीय समाज में एक नया मोड़ आया। प्रत्येक भारतीय के हृदय में खुशी और उल्लास की उमंगे उठने लगी। वास्तव में स्वतन्त्रता प्राप्ति का दिन एक युग की समाप्ति एवं नये युग के प्रारम्भ का सूचक था। जहाँ स्वतन्त्रता पाकर भारतीयों में उल्लास और संतोष था वहीं उत्साह और उल्लास के साथ ही असंतोष और निराशा भी उत्पन्न होने लगी। स्वातन्त्र्योत्तर भारत में राष्ट्रीय स्तर पर अनेक राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं साहित्यिक परिवर्तन बड़ी तीव्र गति से हुए। डॉ॰ कृष्ण लाल ने स्वातन्त्र्योत्तर काल को इस प्रकार परिभाषित किया है कि स्वातन्त्र्योत्तर काल साहित्य की दृष्टि से परिवर्तन काल है। प्रबन्ध काव्य प्रायः परिवर्तन काल में ही अधिक मिलते हैं। इस युग में प्राचीन शैली नवीन शैली को अधिकार सौंपती है।''[240] डॉ॰ बनवारी लाल शर्मा के अनुसार – ''स्वातन्त्र्योत्तर प्रबन्ध काव्य में जिन प्रयोगों को स्थान मिला। उनके बीज स्वतन्त्रता से पूर्व ही आधुनिक युग परिवर्तित परिस्थितियों में रचित प्रबन्ध काव्यों में बो दिये गये थे। स्वतन्त्रता के परवर्ती काल तक आते–आते इन प्रयोगों में और अधिक विस्तार हुआ है साथ ही नवीन प्रयोगों की ओर से भी कवियों ने दृष्टि फेर ली है।''[241] वस्तुतः स्वातन्त्र्योत्तर काल में

---

[239] डॉ॰ प्रमिला सिंह, स्वातन्त्र्योत्तर गीति नाट्य–काव्य, पृ॰ 51
[240] डॉ॰ श्री कृष्ण लाल, आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ॰ 97
[241] डॉ॰ बनवारी लाल शर्मा, स्वातन्त्र्योतर हिन्दी प्रबन्ध काव्य, पृ॰ 16

नाट्य–काव्यों की रचना पर्याप्त मात्रा में हुई तथा इनके माध्यम से नए आदर्शो की स्थापना हुई। एवं आधुनिकता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देने लगा। पौराणिक आख्यान एवं पात्रों को प्रकट करने व समाधान की दिशा में कवियों द्वारा विशेष प्रयत्न किये गये। भारतीय स्वाधीनता की उपलब्धि के साथ अनेक धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक समस्याएं हमारे समक्ष प्रस्तुत हुई।

देश की राजनैतिक दशा बदल गई। देश विभाजन के कारण स्वतन्त्रता के लिए एक जुट होकर लड़ने वाले हिन्दू–मुस्लमान भारत–पाक विभाजन के कारण एक दूसरे के शत्रु बन गए थे। देश रियासतों में अंग्रेजों की कुटिल नीतियों के कारण बट गया था। डॉ॰ राजेन्द्र यादव ने उस समय देश की राजनैतिक दशा को इस प्रकार रेखांकित किया है – ''देश की आत्मा को प्रजातन्त्र के उस राष्ट्रीय झूठ ने शायद सबसे अधिक तोड़ा है। बड़ो ने जिन आदर्शो को जीवन का आधार घोषित किया था, उन्हें खुद अपने आप ही कुचल दिया और भ्रम का यह धक्का सम्भालना इस पीढ़ी के लिए मुश्किल हो गया। वह हर चीज को ठोकर मारकर तोड़ देना चाहती है जिसे सामने दिखाकर बहकाया जाता है।''[242] नई पीढ़ी भ्रष्ट तत्वों के लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं थी। इसलिए वास्तविकता का सामना होने पर वह भ्रष्टाचार के आघात को सह नहीं पाती है। डॉ॰ धर्मवीर भारती ने अपने नाट्य–काव्य अंधायुग में उस समय की मर्यादाहीनता, अनास्था, प्रजातन्त्र में राजनेताओं के आडम्बर, कथनी करनी में भेद के कारण जन–जीवन का यथार्थ भी अमर्यादित आचरण एवं अनास्था के गर्त में गिर चुका है –

''मैनें यह बार–बार देखा था
निर्णय के क्षण में विवेक और मर्यादा
व्यर्थ सिद्ध होते आए हैं सदा''[243]

'एक कण्ठ विषपायी' में दुष्यंत कुमार ने भी यथार्थ भावबोध के सहारे शासकों की नियति एवं उनके कार्यो से प्रभावित प्रजा को रूपायित करता है। प्रजा शासकों की हर भूलों के उत्तरदायित्व को सहन करने हेतु विवश होती है।

शासक की भूलों का उत्तरदायित्व
प्रजा को वहन करना पड़ता है।
उसे गलित मूल्यों का दण्ड भरना पड़ता है
आज मैं मनुष्य ही नहीं हूँ
मैं प्रजा भी हूँ.....''[244]

---

[242] डॉ॰ राजेन्द्र यादव, एक दुनिया सामानान्तर, पृ॰ 23
[243] डॉ॰ धर्मवीर भारती, अंधा युग, पृ॰ 29
[244] डॉ॰ दुष्यंत कुमार, एक कंठ विषपायी, पृ॰ 52

इसके अतिरिक्त भ्रष्टाचार, महंगाई, बेरोजगारी, भाई–भतीजावाद, जातिवाद तथा शासन में पूँजीवाद का बढ़ता प्रभाव इसी काल की देन है। जिस मूलभूत परिवर्तन की आशा स्वतंत्रता से पूर्व की गई थी वह परिवर्तन स्वतन्त्रता के पश्चात भी नहीं आया। प्रशासन पद्धति, न्याय पद्धति और समूचे व्यवहार क्षेत्र में अंग्रेजों द्वारा अपनाई गई नीतियों को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया गया। इस विषय में डॉ॰ महीप सिंह का कथन उल्लेखनीय है। – ''आजादी से पहले देश का राजनीतिक नेतृत्व जनमानस की भावनाओं का प्रतनिधित्व करता था नौकरशाही विदेशी सत्ता की शासन नीति का वफादारी से संचालन करने वाला 'कोडी' वर्ग था।.... पर आजादी मिलते ही नेता वर्ग शासन वर्ग बन गया और नौकरशाही का वर्ग अपने नए मालिकों का सबसे प्रिय निकट का सहयोगी बन गया।''[245]

व्यक्ति समाज की छोटी इकाई है। समाज के समस्त क्रियाकलापों का आधार व्यक्ति ही है। इसलिए समाज में घटित प्रत्येक घटना का प्रभाव जन–मानस पर अनिवार्य रूप से पड़ता है। स्वातन्त्रोत्तर भारत के सामाजिक जीवन में भी अनेक परिवर्तन हुए। स्वातन्त्र्योत्तर भारत में आरंभिक दो दशकों तक नयी व्यवस्थाओं के साथ सांमजस्य की समस्या रही। उस समय के कवियों ने व्यापक रूप से इन समस्याओं को अपने कव्य में अभिव्यक्ति प्रदान की। विश्व के परिवर्तित परिवेश पर कमलेश्वर जी ने लिखा है। ''स्वतन्त्रता के पश्चात् राष्ट्रीय क्षितिज पर उठने वाले सवालों का कोई समाधान नहीं खोजा गया।''[246] स्वातन्त्र्योत्तर भारत में विभाजन के कारण साम्प्रदायिक झगड़े भड़क उठे थे भीषण नर संहार हुआ था, विश्व युद्धों के कारण अमानवीयता, अनास्था, अविश्वास, धाराशायी हुए मानवीय मूल्य समाज में फैल गये। धर्मवीर भारती ने 'अंधा युग' में उस युग को ही 'अंधे युग' से ही विभूषित किया है –

युद्धोपरान्त
यह 'अंधायुग' अवतरित हुआ
जिसमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ
आत्माएं सब विकृत है।''[247]

युद्धोपरान्त सामाजिक यथार्थ बोध को यहाँ व्याख्यायित किया गया है –

''युद्ध के उपरान्त
समाज में वर्ण संकरता बढ़ जाती है।''[248]

---

[245] डॉ॰ महीप सिंह, विद्रोह और साहित्य, पृ॰ 34
[246] कमलेश्वर, नयी कहानी की भूमिका, पृ॰ 124
[247] धर्मवीर भारती, अंधा युग, पृ॰ 12
[248] नरेश मेहता, महाप्रस्थान, पृ॰ 120

'अंधा युग' 'एक कण्ठ विषपायी' महप्रस्थान आदि नाट्य काव्यों में नाट्य–काव्यकारों ने युद्ध से उत्पन्न समस्याओं को चित्रित किया है। शम्बूक, 'संशय की एक रात' नाट्य काव्यों में मानवीयता वादी दृष्टि को प्रस्तुत किया गया है।

निष्कर्षतः स्वातन्त्र्योत्तर भारत में उत्पन्न समस्याओं को रचनाकारों ने खुलकर चित्रित किया। समाज में फैली अनेक बुराइयों के विरूद्ध रचनाकारों ने आवाज उठाई एवं उनके समाधान हेतु भी प्रयास किए। स्वातन्त्र्योत्तर भारत में पुनर्वास की समस्या से हमारी अर्थव्यवस्था पर भी बहुत भारी प्रभाव पड़ा। उस समय के कवि एवं कलाकार भी इन प्रभावों को व्यापक रूप में अभिव्यक्त करते हैं विश्व के परिवर्तित परिवेश पर माथुर जी ने लिखा है। ''पूरी–पूरी जातियों संस्कृतियों तथा अल्पसंख्यकों को जड़मूल से विनिष्ट करने की धारणाएँ, गणित तथा सांख्यिकी के आधार पर रचे गये पूर्व निश्चित हत्या–काण्ड, मन दोहन की क्रिया विधियाँ, सम्पूर्ण युद्ध की स्थापना विश्व का दो मतवादों के शिविर तथा उनके रूपान्तरों में केन्द्रीभूत हो जाने का क्रम,.... उन्होंने भय ये सब ऐसी अकल्पनीय वस्तु स्थितियाँ हैं, जो अब तक के इतिहास में आई ही नहीं थी।''[249] वहीं डॉ॰ बैजनाथ सिंहल ने उस युग को इस प्रकार रूपायित किया है। – पूँजीपति वर्ग की संरचना भी नये ढंग से होने लगी थी। जिसे उच्च वर्ग का नाम दिया गया। पुराने पूँजीपतियो ने उद्योगों पर अपना अधिकार कर लिया था। कुछ चालाक किस्म के उद्योगपतियों ने उद्योगों को एकत्रित कर ट्रस्टों को जन्म देकर सारी पूँजी पर एकाधिकार कर लिया।''[250] इस प्रकार लेखकों ने वर्गो में बटे समाज का भी चित्रण किया एवं शोषण करने वाले उच्च वर्गो पर कड़े प्रहार भी किये। स्वातन्त्र्योत्तर काल में बड़े स्तर पर अनेक परिवर्तन होने के कारण इसे 'परिवर्तन – काल' भी कहा गया।

---

[249] डॉ॰ गिरिजा कुमार माथुर, हिन्दी कविता, पृ॰ 29
[250] डॉ॰ बैजनाथ सिंहल, नयी कविता का इतिहास, पृ॰ 22